त्रैमासिक पत्रिका
हमार गाँव
जनवरी – मार्च, 2014, वर्ष 13 : अंक 52

आई0एस0एस0एन0 नं0 0972–7825

इस अंक में

क्र0सं0	विषय	पृष्ठ सं0
1.	माननीय कुलपति जी का संदेश	– 03
2.	चारे का भण्डारण	– 05
3.	भिण्डी की वैज्ञानिक खेती	– 07
4.	लीची की उन्नत खेती	– 10
5.	औषधीय खेती और उत्तर प्रदेश	– 15
6.	पर्यावरण संरक्षण की शुरुआत	– 16
7.	शुद्ध खाना सबको मिले	– 18
8.	दुधारू पशु पालन	– 19
9.	अदरक की खेती	– 23
10.	जरबेरा की प्लास्टिक घरों में उन्नत खेती	– 26
11.	आम की उन्नत खेती	– 30
12.	उपयोगी गुलाब के फूल	– 40
13.	लाभदायक लोबिया के पत्ते	– 42
14.	सदस्यता फार्म	

प्रधान संरक्षक

डॉ० राजेन्द्र बी० लाल
कुलपति,
सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज
इलाहाबाद – 211 007

❖❖❖

संरक्षक

डॉ० एस० बी० लाल, प्रति कुलपति
डॉ० नाहर सिंह, निदेशक (प्रसार)
प्रो० (डॉ०) आरिफ ए० ब्राडवे, निदेशक (शोध)

❖❖❖

सलाहकार मंडल

प्रो० डॉ० एस० बी० लाल, प्रो० डॉ० आरिफ ए० ब्राडवे
प्रो० डॉ० डी० बी० सिंह, प्रो० डॉ० प्रमिला गुप्ता
प्रो० डॉ० पी० डब्ल्यू० रामटेके
प्रो० डॉ० वी० एम० प्रसाद

❖❖❖

प्रभागाध्यक्ष

प्रो० (डा०) आरिफ ए० ब्राडवे

❖❖❖

मुख्य संपादक

श्रीमती जे० जे० लाल

❖❖❖

डिजाइन एवं ले आउट

संदीप कुमार गोयल

लेख, सदस्यता एवं विज्ञापन हेतु निम्न पते पर लिखें या सम्पर्क करें –

विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग
सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ
एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज
इलाहाबाद – **211 007**
फोन :– **(0532) 2684278, 2684284, 2684290**

वार्षिक व्यक्तिगत सदस्यता शुल्क रू०. **100/–** । संस्था सदस्यता शुल्क **200/–** (डाक खर्च अतिरिक्त)

पत्रिका में प्रकाशित समस्त लेख व रचनाओं से प्रकाशक एवं सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। ये लेखकों के निजी विचार और सुझाव हैं।

एग्गीज़

शुद्ध, स्वच्छ, रोगाणु रहित,
उच्च वैज्ञानिक विधि द्वारा
उपचारित

स्टैन्डर्ड दूध
टोन्ड दूध
डबल टोन्ड दूध
सुगन्धित दूध
टेबिल बटर
कुकिंग बटर
पनीर
दही
खोआ
देशी घी
विभिन्न प्रकार की आइसक्रीम

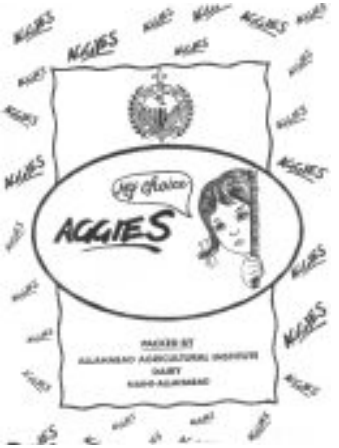

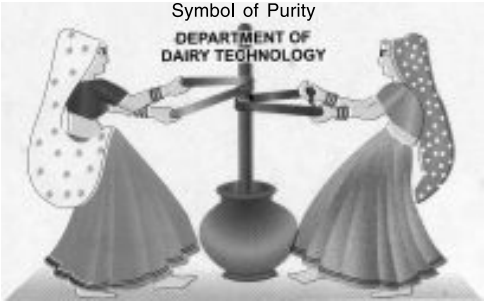

डेयरी अधीक्षक

स्टूडेन्ट्स ट्रेनिंग डेयरी

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज

इलाहाबाद - २११ ००७ (उ०प्र०) फोन - २६८४६०१

शादी एवं पार्टियों के शुभ अवसर पर सफाई की विशेष सुविधा उपलब्ध।

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नॉलॉजी एण्ड साइंसेज

Sam Higginbottom Institute of Agriculture, Technology & Sciences

(Formerly Allahabad Agricultural Institute)

(Deemed-to-be-University)

Allahabad - 211 007 U.P. India

रेव्ह (प्रोफे0 डा0) राजेन्द्र बी0 लाल, कुलपति
Rev. (Prof. Dr.) Rajendra B. Lal, Vice-Chancellor
Ph.D.Soil Science (Kansas State University, U.S.A.)
Ph.D.Ag. Botany (Kanpur)
PDF Envion. Chem (K.S.U., USA)
FISAC, Gamma Sigma Delta Scholar.

Office : 0532-2684284
Res. : 0532-2684587
Fax : 0532-2684593
E-Mail : vicechancellor@shiats.edu.in

माननीय कुलपति का संदेश

भारत को विश्व में आर्थिक शक्ति के रूप में पहचान बनाने के लिए अपनी कृषि उत्पादकता को विश्व के विकसित देशों के समान करनी होगी। इसके लिए वृहद पैमाने पर उचित एवं नवीनतम् तकनीक को अपनाना जरूरी है, जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। विश्व में भारत का फल उत्पादन में द्वितीय स्थान है। इसके बावजूद भारत का फलों के विश्व व्यापार में भागीदारी करीब 1 प्रतिशत ही है, इसका मुख्य कारण हमारे फलों की गुणवत्ता विश्व के अन्य देशों के फलों से काफी पीछे है।

खरीफ, रबी और जायद सीजन के दौरान बीज बाजार में सरकारी, बीज प्रदाता संस्थाओं, निजी बीज कम्पनियों द्वारा विभिन्न प्रकार के फसली बीज किसानों को उपलब्ध कराये जाते है। ऐसे में किसान के सामने अच्छे व गुणवत्तायुक्त बीज का चुनाव एक दुविधापूर्ण स्थिति खड़ी कर देता है। बीज के लिए आवश्यक है कि यह निर्धारित फसल किस्म को प्रतिनिधित्व करता हो, उसमें अक्रिय पदार्थ जैसे मिट्टी, कंकड़, टूटे हुए बीज, खरपतवार के बीज व अन्य कचरा न हो, आदि बातों को ध्यान में रखकर बीज बाजार से अच्छे बीज का चुनाव करें जो आर्थिक सम्पन्नता को बढ़ा सके। साग सब्जियों का हमारे दैनिक जीवन में कितना महत्व है यह किसी से छुपा नहीं है। दरअसल शाक–सब्जी भोजन के ऐसे स्त्रोत है जो न केवल हमारे भोजन का पोषक मूल्य बढ़ाते है बल्कि उसको स्वादिष्ट भी बनाते है। विशेषज्ञों की मानें तो एक वयस्क व्यक्ति को संतुलित भोजन के लिए प्रतिदिन 85 ग्राम फल और 300 ग्राम

साग–सब्जियों का सेवन करना चाहिए। हमारे देश में सब्जियों की औसत उपलब्धता मात्र 120 ग्राम से भी कम है, यानी सब्जी उत्पादन के व्यवसाय में अभी बहुत अवसर है। भिण्डी पूरे भारतवर्ष में उगायी जाने वाली सब्जी की फसल है। मुख्य रूप से भिण्डी का प्रयोग तरकारी बनाने में तथा इसके अतिरिक्त इसकी पत्तियां व जड़ों का प्रयोग औषधि बनाने के रूप में भी किया जाता है। लीची एक स्वादिष्ट फल है। भारत में लगभग 98 प्रतिशत लीची बिहार राज्य के मुजफ्फरनगर तथा दरभंगा जिले में उत्पन्न की जाती है। इसकी खेती हिमालय के तलहटी राज्यों विशेषकर उत्तराखण्ड, त्रिपुरा, पंजाब और हिमांचल प्रदेश में फैल चुकी है। भारत में मसालों में अदरक का प्रमुख स्थान है। यह विदेशी मुद्रा प्राप्ति का एक प्रमुख स्त्रोत है। विश्व उत्पादन का लगभग आधा अदरक भारत में ही उत्पादित किया जाता है। भारत में अदरक की खेती हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, केरल, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा आसाम में की जाती है।

औषधीय पौधों की खेती भारतवर्ष में बहुत ही प्राचीन काल से की जा रही है। ऋग्वेद में भी कई औषधीय पौधों का विवरण मिलता है, जो प्रमाणित करता है कि भारतवंशी कितने पहले से इनके बारे में जानते थे। औषधीय खेती के बढ़ने का मुख्यतः कारण आयुर्वेद व होम्योपैथिक दवाओं का चलन का बढ़ने से है।

फूलों का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता है और ये अलग क्रियाओं में प्रयोग होकर अपनी विशेषताओं का वितरण करते है जैसे – खेती, दवा के रूप में, सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में तथा भोजन में प्रयोग द्वारा भी इनका महत्व बढ़ता है। इसीलिये कहते है कि ''मनुष्य के जीवन में बहुत से पुष्प होते है परन्तु गुलाब एक होता है।'' ये अपनी सुगन्ध व मखमली स्पर्श के लिए जाना जाता है। यह अत्यधिक सुन्दर व प्रभावशाली स्पर्श फूल होने के कारण मानव जीवन में प्रचलित है। यह अपने विभिन्न रंगों व आकार के द्वारा लोगों को आकर्षित करने में सफल है। एक बड़ी संख्या में इसका प्रयोग इत्र, तेल, गुलाब जल, और अन्य चीजों में प्रयोग होता है।

भारतवर्ष मूलतः एक कृषि प्रधान देश है तथा अधिकतर प्रतिशत कृषक परिवार खेती तथा पशुपालन पर ही निर्भर रहते है। कृषि के साथ साथ दुग्ध उत्पादन को एक व्यवसायिक रूप देकर हमारे कृषक अपने जीवन स्तर को और अधिक ऊँचा उठा सकते है। हमारा पशुधन राष्ट्र की आय की दृष्टि से मेरूदण्ड का कार्य करता है। भारतवर्ष अभी दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर आ गया है, फिर भी इस व्यवसाय को आगे बढ़ने की संभावना है। डेयरी एक ऐसा व्यवसाय है, जो ग्रामीण वर्ग को सदैव रोजगार के अवसर दे सकता है। वास्तविकता यही है कि पिछले एक दशक में पशुधन एवं मछलियां वाला क्षेत्र बजाए फसलों के अधिक तेजी से वृद्धि कर रहा है। शीघ्र लागू होने वाली 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए दिसम्बर में तैयार एक रिपोर्ट में इस बदलाव को मान्यता देते हुए पशुधन को कृषि वृद्धि का इंजन माना है।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित ।

रेव्ह0 (प्रो0डॉ0) राजेन्द्र बी0 लाल)
कुलपति
सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर,
टेक्नोलॉजी एण्ड साइंसेज
(कृषक मित्र)

चारे का भण्डारण

डा० मदन सेन सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

प्रो० (डा०) नाहर सिंह
निदेशक प्रसार
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

पशुओं से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक चारे की आवश्यकता होती है। इन चारों को पशुपालक या तो स्वयं उगाता है या फिर कहीं से खरीद करके पूर्ति करता है। चारे की फसल उगाने के लिए निश्चित समयावधि होती है जो कि अलग–अलग चारा किस्मों के लिए अलग–अलग है। चारे को अधिकांशतः हरी अवस्था में पशुओं को खिलाया जाता है तथा इसकी अतिरिक्त मात्रा को सुखाकर भविष्य में प्रयोग करने के लिए भंडार कर लिया जाता है ताकि चारे की कमी के समय उसका प्रयोग पशुओं को खिलाने के लिए किया जा सके। चारे को साधारण तरीके से भंडारण करने पर उसमें पोषक तत्व बहुत कम रह जाते हैं। इसी चारे का भण्डारण यदि वैज्ञानिक तरीके से भण्डारण किया जाए तो उसकी पौष्टिकता को काफी हद तक बढ़ाया भी जा सकता है। विभिन्न चारों को भण्डारण करने की कुछ विधियाँ नीचे दी जा रही है।

1. घास को सुखाकर रखना (हे बनाना) :– हे बनाने के लिए हरे चारे या घास को इतना सुखाया जाता है जिससे कि उसके नमी की मात्रा 15–20 प्रतिशत तक ही रह जाए। इससे पादप कोशिकाओं तथा जीवाणुओं की एन्जाइम क्रिया रुक जाती है, लेकिन इससे चारे की पौष्टिकता में कमी नहीं आती। हे बनाने के लिए लोबिया, बरसीम, लूसर्न, सोयाबीन, मटर, लेग्यूम्स, नेपियर, जौ, जई, बाजरा, ज्वार, मक्का, गिन्नी, अंजन आदि घासों का प्रयोग किया जाता है। लेग्यूम्स घासों में सुपाच्य तत्व अधिक होते हैं तथा इसमें प्रोटीन व विटामिन ए.डी.व.ई. भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। दुग्ध उत्पादन के लिए ये चारे की फसलें बहुत उपयुक्त होती हैं। हे बनाने के लिए चारा सुखाने हेतु निम्नलिखित तीन विधियों में से कोई भी विधि अपनायी जा सकती है।

क) चारे को परतों में सुखाना :– जब चारे की फसल में फूल आने वाली अवस्था होती है, तो उसे काटकर पूरे खेत में फैला देते हैं तथा बीच–बीच में उसे पलटते रहते हैं जब तक कि उसमें पानी की मात्रा लगभग 15 प्रतिशत तक न रह जाए। इसके बाद इसे इकट्ठा कर लिया जाता है तथा ऐसे स्थान पर जहां वर्षा का पानी न आ सके, इसका भंडारण कर लिया जाता है।

ख) चारे को गट्ठर सुखाना :– इसमें चारे को काटकर 24 घण्टों तक खेत में पड़ा रहने देते हैं। इसके बाद इसे छोटी–छोटी ढेरियों अथवा गट्ठरों में बांधकर पूरे खेत में फैला देते हैं। इन गट्ठरों को बीच–बीच में पलटते रहते हैं। जिससे नमी की मात्रा घट कर लगभग 18 प्रतिशत तक हो जाए।

ग) चारे की तिपाई विधि द्वारा सुखाना :– जहां भूमि अधिक गीली रहती है अथवा जहां वर्षा अधिक होती हो ऐसे स्थानों पर खेत में तिपाइयां गाढ़कर चारे की फसल को उन पर फैला देते हैं।

इस प्रकार वे भूमि के बिना सम्पर्क में आए हवा व धूप से सूख जाती हैं। कई स्थानों पर घरों की छत पर भी घासों को सुखाकर हे बनाया जाता है। प्रदेश में मध्यम व ऊँचे क्षेत्रों में हे (सूखे घास) को कूप अथवा गुम्बद की शक्ल के ढेर लगाकर रखते हैं। इसमें चारे को ठीक ढंग से व्यवस्थित करके रखा जाता है। इनका आकार कोन की तरह होने के कारण इन पर वर्षा का पानी खड़ा नहीं हो पाता। जिससे चारे की पौष्टिकता में कमी नहीं आती।

2. सूखे चारे की पौष्टिकता बढ़ाना :– सूखे चारे जैसे भूसा (तूड़ी), पुआल आदि में पौष्टिक तत्व लिगनिन के अंदर जकड़े रहते हैं, जो कि पशु के पाचन तंत्र द्वारा

अलग नहीं किए जाते हैं। इन चारों का कुछ रासायनिक पदार्थों द्वारा उपचार करने, इनके पोषक तत्वों को लिगनिन से अलग कर लिया जाता है। इसके लिए यूरिया उपचार की विधि सबसे सस्ती तथा उत्तम है।

उपचार की विधि :– एक क्विंटल सूखे चारे जैसे पुआल या तूड़ी के लिए चार किलो यूरिया को 50 किग्रा साफ पानी में घोल बनाते हैं। चारे को समतल तथा कम ऊँचाई की तह में फैलाकर उस पर यूरिया के घोल का छिड़काव करते हैं। चारे को पैरों से अच्छी तरह दबा कर उस पर पुनः सूखे चारे की एक और पर्त बिछा दी जाती है और उस पर यूरिया के घोल का समान रूप से छिड़काव किया जाता है। इस तरह परत पर परत बिछाकर 25 क्विंटल की ढेरी बनाकर उसे एक पोलीथीन की शीट से अच्छी तरह से ढक दिया जाता है। यदि पॉलीथीन की शीट उपलब्ध न हो, तो उपचारित चारे की ढेरी को गुम्बदनुमा बनाते हैं जिसे ऊपर से पुआल आदि से ढक दिया जाता है। उपचारित चारे को 3 सप्ताह तक ऐसे ही रखा जाता है। जिससे उसमें अमोनिया गैस बनती है, जो चारे को पौष्टिक तथा सुपाच्य बना देती है। इसके बाद इस चारे को पशु को हरे चारे के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है।

यूरिया उपचार से होने वाले लाभ :–

1. उपचारित चारा नरम व स्वादिष्ट होने के कारण पशु उसे खूब चाव से खाते हैं तथा चारा बर्बाद नहीं होता।
2. 5 या 6 किलो उपचारित पुआल खिलाने से दुधारु पशुओं में लगभग 1 किलो दूध की वृद्धि हो जाती है।
3. यूरिया उपचारित चारे को पशु आहार में सम्मिलित करने से दाने में कमी की जा सकती है जिससे दूध के उत्पादन की लागत कम हो जाती है।
4. बछड़े/बच्छियों को यूरिया उपचारित चारा खिलाने से उनका वजन तेजी से बढ़ता है तथा वे स्वस्थ दिखायी देते हैं।

सावधानियाँ :–

1. यूरिया का घोल साफ पानी में तथा यूरिया की सही मात्रा के साथ बनाना चाहिए।
2. घोल में यूरिया पूरी तरह से घुल जानी चाहिए।
3. उपचारित चारे को 3 सप्ताह से पहले पशु को कदापि नहीं खिलाना चाहिए।
4. यूरिया के घोल को चारे के ऊपर समान रूप से छिड़कना चाहिए।

3. साइलेज बनाना :– हरा चारा जिसमें नमी की पर्याप्त मात्रा होती है, इसको हवा की अनुपस्थिति में जब किसी गड्ढे में दबाया जाता है, तो किण्वन की क्रिया से वह चारा कुछ समय बाद एक अचार की तरह बन जाता है जिसे साइलेज कहते हैं। हरे चारे की कमी होने पर साइलेज का प्रयोग पशुओं को खिलौने के लिए किया जाता है।

साइलेज बनाने योग्य फसलें :– साइलेज लगभग सभी घासों से अकेले अथवा उनके मिश्रण से बनाया जा सकता है। जिन फसलों में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट्स अधिक मात्रा में होते हैं जैसे कि ज्वार, मक्का, जई, गिन्नी घास, नेपियर आदि, साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त होती है। फलीदार जिनमें कार्बोहाइड्रेट्स कम तथा नमी की मात्रा अधिक होती है, को अधिक कार्बोहाइड्रेट्स वाली फसलों के साथ मिलाकर अथवा शीरा मिला कर साइलेज के लिए प्रयोग किया जा सकता है। साइलेज बनाने के लिए चारे की फसलों को फूल से लेकर दानों के दूधिया होने तक की अवस्था में काट लेना चाहिए। साइलेज बनाते समय चारे में नमी की मात्रा 65 प्रतिशत होनी चाहिए।

साइलोपिट्स :– साइलेज जिन गड्ढों में भरकर बनाया जाता है उन्हें साइलोपिट्स कहते हैं। साइलोपिट्स कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे ट्रेन्च विधि से बनाने वाले साइलोपिट्स बनाने सस्ते व आसान होते हैं। आठ फुट व्यास तथा 12 फुट गहराई वाले गड्ढे में 4 पशुओं के लिए तीन माह तक का साइलेज बनाया जा सकता है। गड्ढा ऊँचा होना चाहिए तथा इसे भली प्रकार से कूट कर सख्त बना लेना चाहिए। साइलो के फर्ष व दीवारें पक्की बनानी चाहिए। यदि ये सम्भव न हो तो दीवारों की लिपाई भी की जा सकती है।

साइलेज बनाने की विधि :– साइलेज बनाने के लिए जिस भी हरे चारे का उपयोग करना हो, उसे उपयुक्त अवस्था में खेत से काट कर 2 से 5 सेंमी के टुकड़ों में कुट्टी काट लेना चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा चारा साइलो पिट में दबा कर भरा जा सके।

शेष पृष्ठ सं० 15--पर

भिण्डी की वैज्ञानिक खेती

निमिशा शेरिल सिंह
बिशप वेशकॉट गर्ल्स स्कूल,
नामकुम,
राँची

प्रो0 (डा0) नाहर सिंह
निदेशक प्रसार
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

भिण्डी पूरे भारतवर्ष में उगायी जाने वाली सब्जी की फसल है। मुख्य रूप से भिण्डी का प्रयोग तरकारी बनाने में तथा इसके अतिरिक्त इसकी पत्तियाँ व जड़ों का प्रयोग औषधि बनाने के रूप में भी किया जाता है। भिण्डी के डण्ठल को कुचल कर गुड़ व शक्कर को साफ करने के लिए एक लसलसा घोल तैयार किया जाता है। भिण्डी को मैदानी क्षेत्रों में वर्ष में दो बार सफलता के साथ उगाया जाता है।

जलवायु :– भिण्डी गर्म मौसम की फसल है। लगातार वर्षा भी इस फसल के लिए हानिकारक है। भिण्डी के बीजों के उचित जमाव के लिए 25–35 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम की आवश्यकता होती है। 17 डिग्री से कम तापक्रम पर बीजों का जमाव नहीं होता है।

अगर दिन का तापक्रम 42 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक हो जाता है, तो भिण्डी के फूल भी झड़कर गिरने लगते हैं। जिसके कारण उपज में भारी कमी आ जाती है।

भूमि का चयन :– भिण्डी की खेती सभी प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। भारी मृदा में इसकी खेती करने के लिए हमें उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। अच्छी पैदावार लेने के लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट मृदा में इसके लिए उत्तम है। जिसका पी.एच. मान 6–7 के बीच हो।

उन्नत प्रजातियां :–

1. पूसा सावनी :– अच्छे उत्पादन की दृष्टि से पूसा सावनी गर्मी के लिए एक उन्नतशील किस्म मानी जाती है। इस किस्म की फसल ग्रीष्म ऋतु में 40–50 दिनों में तैयार होकर फल देने लगती है तथा वर्षा ऋतु में 60–65 दिनों में फलने लगती है। इस किस्म की उपज 80–100 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। इस किस्म पर विषाणु जनित पीला चित्तवर्ण रोग का प्रकोप कम होता है।

2. पूसा मखमली :– इस किस्म की भिण्डी के फल चिकने व हरे रंग के होते हैं। इसमें पीला चित्तवर्ण रोग का प्रकोप अधिक होने के कारण इसकी पैदावार 80–90 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। यह गर्मी के लिए अच्छी प्रजाति है।

3. पंजाब पद्मिनी :– इस किस्म का विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना द्वारा किया गया। इसके फल सीधे, चिकने, गहरे हरे रंग के होते हैं। बुवाई से 50–60 दिनों के पश्चात् इसकी उपज प्राप्त होने लगती है। इस किस्म की उपज 90–100 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

4. परभनी क्रान्ति :– इस किस्म का विकास मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय परभनी महाराष्ट्र द्वारा किया गया। इस किस्म पर पीला चित्तवर्ण रोग नहीं लगता है। इसके फल लम्बे, मुलायम, गहरे हरे रंग के होते हैं। इसकी औसत उपज 100–120 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। बुवाई के 50–55 दिनों पश्चात् फल प्राप्त होने लगते हैं। यह किस्म वर्षा ऋतु के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

5. पंजाब नं. 13 :– इस किस्म का उत्पादन बसन्त ऋतु में किया जाता है। इसकी औसत उपज परभनी क्रान्ति से कम अर्थात् 75–85 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

6. एस–1–1 :– इस किस्म का विकास कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। इसमें रोगों से लड़ने की क्षमता अधिक है। इसकी पैदावार 110–120 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

7. अर्का अभय :– इस किस्म का विकास भारतीय बागवानी शोध संस्थान बंगलौर द्वारा किया गया। यह पीला चित्तवर्ण के प्रति अवरोधी है। इस किस्म में फली छेदक कीट का प्रकोप कम होता है। इसकी पैदावार 90–110 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

8. ईसी. सावनी :– यह एक अति उन्नतशील प्रजाति है। इस किस्म की उपज 80–100 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

9. वी.आर.ओ.–6 :– इस प्रजाति का विकास भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा किया गया है। भिण्डी की यह प्रजाति भी जायद व खरीफ दोनों मौसमों में उगाई जाती है। यह प्रजाति भी पीला चित्तवर्ण के लिए प्रतिरोधी है। इसकी औसत उपज 125 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

10. आजाद भिण्डी–1 :– इस किस्म का विकास चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर के शाकभाजी अनुसंधान केन्द्र, कल्यानपुर द्वारा विकसित है। इस प्रजाति पर पीला चित्तवर्ण रोग का प्रभाव नहीं होता है। इसके फल लम्बे व हरे रंग के होते हैं। इसकी उपज 110–120 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। भिण्डी की उत्पादकता बढ़ाने के लिए संकर प्रजातियों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। भिण्डी की संकर प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं – उदय, वर्षा, विजया, सुप्रिया, प्रिया, सुकोमल एफ–1 आदि।

खाद एवं उर्वरक :– खेत में 1 महीनें पहले 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद मिला लेना चाहिए और उर्वरकों की मात्रा मृदा के परीक्षण के आधार पर देनी चाहिए। अगर किसी कारणवश मृदा परीक्षण नहीं हो पाया है, तो संतुलित उर्वरक के लिए 80 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फास्फोरस एवं 50 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। जिसमें कि नाइट्रोजन की आधी मात्रा और फास्फोरस व पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुआई करते समय देते हैं। शेष बची नाइट्रोजन की मात्रा को 35–40 दिन बाद खड़ी फसल में टापड्रेसिंग द्वारा देते हैं।

भूमि की तैयारी :– भिण्डी की अच्छी फसल के लिए उचित जल निकास युक्त दोमट भूमि उपयुक्त मानी जाती है। सर्वप्रथम एक बार खेत की मिट्टी पलट हल से जुताई करनी चाहिए और फिर उसके बाद 2–3 बार हैरो या देशी हल से जुताई करके खेत में पाटा लगाकर उसे समतल व भुरभुरा बना लेना चाहिए। जिससे जल भराव की स्थिति पैदा न हो।

बीज दर एवं बुवाई का समय :–

(अ) ग्रीष्मकालीन फसल :– भिण्डी की अगेती फसल प्राप्त करने के लिए इसकी बुवाई 15 फरवरी से मार्च के दूसरे सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए। एक हेक्टेयर भूमि के लिए 18–20 किग्रा बीज की मात्रा आवश्यक है।

(ब) वर्षाकालीन फसल :– एक हेक्टेयर भूमि के लिए 10–12 किग्रा बीज पर्याप्त होता है। इसकी बुवाई जून के दूसरे सप्ताह से जुलाई के मध्य तक की जाती है।

बीज को हमें 2.5 सेमी. की गहराई पर बोना चाहिए, साथ में ही खेत में पर्याप्त नमी होना बहुत आवश्यक है। खेत को टुकड़ों में बॉट कर 10–15 दिन के अन्तराल से बुआई करने से हमें लगातार फल प्राप्त होते रहते हैं। जिससे उन्हें बाजार में बेचने में आसानी रहती है।

बीजोपचार :– ग्रीष्मकालीन फसल के लिए बीज को बुआई से पहले 15–20 घण्टे तक साफ पानी में भिगोते है। फिर उसमें से हल्के व कटे हुए बीज, जो पानी में तैरने लगते हैं, उन्हें निकाल कर अलग कर देते हैं तथा शेष पानी में नीचे बैठे बीजों को निकालकर छायादार स्थान में 1–3 घण्टे सुखाते हैं। तत्पश्चात बीजों को 2 ग्राम वेवस्टिन या 2 ग्राम थीरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करते हैं।

बीज बोने की दूरी :– ग्रीष्मकालीन फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी एवं पौधे से पौधे की दूरी 20 सेमी रखनी चाहिए। वर्षा ऋतु में पंक्ति से पंक्ति (मेड़ो) की दूरी 45 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखनी चाहिए। लेकिन हाइब्रिड बीजों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी एवं पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी रखनी चाहिए। इसकी बुवाई डिबलिंग, सीडड्रिल अथवा हल के पीछे किसी भी विधि से कर सकते हैं।

सिंचाई :– भूमि में नमी बनाये रखने हेतु सिंचाई करनी आवश्यक है। बुवाई से पूर्व भूमि की पलेवा करके बुवाई करनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन भिण्डी की फसल में

हमें 4–5 दिन के अन्तराल पर एक बार सिंचाई अवश्य करनी चाहिए तथा वर्षा ऋतु में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। अगर हम सिंचाई में देरी करते हैं, तो फलियॉ सख्त हो जाती हैं, जिससे उनका बाजार मूल्य कम हो जाता है।

खरपतवार नियंत्रण :– भिण्डी की फसल में खरपतवार से बहुत अधिक नुकसान होता है। किसान बेहतर खरपतवार नियंत्रण से होने वाले नुकसान को बचा सकते हैं। भिण्डी की फसल को मुख्यतः बुआई के 30–40 दिन बाद तक खरपतवारों से अधिक हानि होती है। जिसके लिए हम 1–2 निकाई–गुड़ाई करते हैं। रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण के लिए हम बासालीन 48 ईसी. / 1.5 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुआई के पूर्व अथवा लासो 2 (50 ईसी) किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुआई के 1–2 दिन के अन्दर प्रयोग करते हैं।

फलियों की तुड़ाई :– भिण्डी के केवल मुलायम फलियों को तोड़ना चाहिए। पहली तुड़ाई फूल खिलने के 5–6 दिन बाद कर लेनी चाहिए और बाद की तुड़ाई 3–4 दिन के अन्तर पर करनी चाहिए। केवल उन्हीं फलियों को तोड़ना चाहिए, जिनके सिरे हल्का सा मोड़ने पर ही टूट जायें। भिण्डी अगर पेड़ पर ज्यादा दिन तक लगी रहती है, तो उसमें रेशे पड़ जाते हैं, जिससे भिण्डी कड़ी हो जाती है और सब्जी बनाने लायक नहीं रहती है।

उपज :– भिण्डी की उपज मौसम, स्थान, किस्म, फसल के प्रबन्धन और फलियों की तुड़ाई के ऊपर निर्भर करती है। अच्छी प्रजातियों से औसतन 110–120 कुन्तल प्रति हेक्टेयर भिण्डी (फलियाँ) उपज के रूप में प्राप्त हो जाती हैं। सामान्यतः ग्रीष्मकालीन भिण्डी से 70–80 कुन्तल प्रति हैक्टेयर की उपज मिल जाती है।

तुड़ाई, श्रेणीकरण एवं विपणन :– भिण्डी की फलियों को तोड़ने के पश्चात् बाजार के माँग के अनुसार गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए फलियों को श्रेणीवार करने पर अच्छा मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। फलियों की तुड़ाई के बाद उसमें से क्षतिग्रस्त सख्त तथा कीटों द्वारा खाई गई, छेदयुक्त फलियों को अलग कर लेना चाहिए। बाजार में केवल स्वस्थ्य व मुलायम फलियां भेजनी चाहिए। जिससे कि उनका बाजार मूल्य अच्छा मिलता है। अगर आपके पास यातायात का साधन अच्छा है, तो भिण्डी को रात या जल्दी सुबह बाजार में भेजना चाहिए। बाजार में भेजने से पूर्व टोकरियों में रखकर गीले बोरे या कपड़े से ढंक कर रखने से फलियों की गुणवत्ता बनी रहती है।

भण्डारण :– ताजी तोड़ी गयी भिण्डी को हम 7–9 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तथा 75 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर कुछ दिनों के लिए बिना कोई रंगहीन के भण्डारित कर सकते हैं।

फसल सुरक्षा प्रबन्धन :–

1. पीत शिरा मोजैक (चित्तवर्ण) :– इस रोग से बरसात में भिण्डी के पौधे की पत्तियां चमकीली व पीली होकर गिरने लगती हैं। पौधे की पत्तियों में क्लोरोफिल कम होने के कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कम और पौधा कमजोर हो जाता है। यह रोग वायरस से फैलने वाला भिण्डी का व्यापक व हानिकारक रोग है। कुछ समय पश्चात् पूरा पौधा पीला होकर सूख जाता है।

नियंत्रण :–

- जैसे ही पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई दें तो उन्हें उखाड़कर जला देना चाहिए।
- इस रोग की रोकथाम के लिए डाइमेथोएट 30 ईसी रसायन की एक लीटर मात्रा आवश्यकतानुसार पानी में मिलाकर फसल पर 15 दिनों के अन्तराल पर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए रोग अवरोधी प्रजातियाँ जैसे–परभनी क्रान्ति, वी.आर.ओ.–6, आजाद भिण्डी–1, अर्का अनामिका आदि बोनी चाहिए ।

2. तना एवं फली छेदक कीट :– यह रोग गहरे हरे रंग की चित्तीदार सूंडियों द्वारा फैलता है। सूंडियां मुलायम फलों व तनों में छेद कर घुस जाती हैं और फलों व तनों को खा जाती हैं। जिसके कारण पौधा सूख जाता है और फल खराब हो जाते हैं।

नियंत्रण :– इसकी रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. का 2 ली0 प्रति हेक्टेयर की दर से 600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर 10 दिनों के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें अथवा क्वीनालफास 30 ईसी की 1 मिली0 प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 10 दिनों के

शेष पृष्ठ सं० 22--पर

लीची की उन्नत खेती

नियति जैन
पी.एच.डी. छात्रा
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 देवी सिंह
सहायक अध्यापक
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

लीची एक स्वादिष्ट फल है। भारत में लगभग 98 प्रतिशत लीची बिहार राज्य के मुजफ्फर नगर तथा दरभंगा जिले में उत्पन्न की जाती है। इसकी खेती हिमालय के तलहटी राज्यों विशेषकर उत्तराखण्ड, त्रिपुरा, पंजाब और हिमांचल प्रदेश में फैल चुकी है। उत्तर भारत में जलवायु उपयुक्तता के कारण हिमालय के तलहटी (तराई) के जनपदों यथा–सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बरेली, खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, गोण्डा, सिद्धार्थ नगर, बस्ती, गोरखपुर, महराजगंज, संतकबीर नगर, देवरिया, कुशीनगर, पीलीभीत, मुरादाबाद, रामपुर तथा बिजनौर में लीची की खेती की असीम संभावनायें है। उत्तर प्रदेश में इसका क्षेत्रफल प्रदेश की सम्पूर्ण तराई क्षेत्र में उत्तरी पश्चिम पट्टी से लेकर पूर्व तक जहाँ गर्म हवाओं (लू) के चलने का भय नहीं है, सफलतापूर्वक बढ़ाया जा सकता है।

जलवायु :– नम उपोष्ण जलवायु लीची के लिए उपयुक्त होती है। जाड़े के दिनों में अधिक पाला और गर्मी के दिनों में लू इसकी खेती में बाधक है। फूल आने से चार महीने पूर्व यदि मौसम ठण्डा और सूखा रहे, तो फल अच्छे आते हैं। तेज गर्म हवाओं से फल फट जाते हैं और पेड़ से गिर भी जाते हैं। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश के गर्म मैदानी भागों में इसकी सफल खेती नहीं हो सकती है। 100 से 150 सेन्टीमीटर वार्षिक वर्षा, 38 डिग्री सेल्सियस से कम तापक्रम एवं 69–84 प्रतिशत आर्द्रता इसके लिए उत्तम है।

भूमि :– ऊसर भूमि को छोड़कर सभी प्रकार की भूमियों में जिसमें जीवांश पदार्थ अच्छी मात्रा में हो और जल निकास अच्छा हो, लीची की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। गहरी उपजाऊ चिकनी दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश पदार्थ अच्छा हो और पानी न ठहरता हो, लीची के लिए सर्वोत्तम है। हल्की अम्लीय भूमि में पेड़ों की वृद्धि अच्छी होती है। ऐसी भूमि में लीची की जड़ों के ऊपर कुछ गाँठें पाई जाती है, जिनमें माइकोराइजा नामक कवक पायी जाती है। जिस कारण वृक्षों की वृद्धि अच्छी होती है। मुजफ्फरपुर (बिहार) की भांति देवरिया तथा महराजगंज जनपद जहां कैल्शियम बाहुल्य ''भाट'' भूमि पायी जाती है। उसमें लीची की खेती अच्छी की जा सकती है।

किस्में :– भारत में अभी तक लीची की सीमित किस्में ही उपलब्ध हैं, जिसका मुख्य कारण इसका भारत में देर से प्रवेश है। यहाँ पर व्यापारिक स्तर की कुछ प्रमुख किस्में दी जा रही हैं –

1. अर्ली सीडलेस (अर्ली बेदाना) :– इसके फल जून के दूसरे सप्ताह में पकते हैं। फल हृदयाकार से अण्डाकार शक्ल के होते हैं। प्रति फल औसत भार 21. 67 ग्राम होता है। छिलका पतला गहरे लाल रंग का होता है। प्रति फल गूदे का भार लगभग 18 ग्राम, गूदा मुलायम, रंग सफेद क्रीमी तथा शर्करा 13.64 प्रतिशत व अम्ल 0.436 प्रतिशत होता है। फल खाने में स्वादिष्ट एवं सुगन्धित होता है। बीज बहुत छोटा और फलत अच्छी होती है।

2. रोज सेन्टेड :– इसके फल भी जून के दूसरे सप्ताह में पकते है। फल गोल, हृदयाकार लगभग 3.12 सेन्टीमीटर लम्बे और 3.05 सेन्टीमीटर चौड़े होते हैं।

एक फल का औसत भार 17.45 ग्राम होता है। छिलका पतला व बैंगनी रंग का मिश्रित होता है। गूदा मुलायम, रंग में भूरा सफेद तथा प्रति फल औसत भारत 13.29 ग्राम होता है।

3. अर्ली लार्ज रेड :– फल जून के तीसरे सप्ताह में पकते हैं। फल तिरछा हृदयाकार लगभग 3.53 सेन्टीमीटर लम्बे, 3.03 सेन्टीमीटर चौड़े होते हैं तथा एक फल का औसत भार 20.45 ग्राम होता है। छिलका पतला, गहरे लाल रंग का, गूदा कड़ा भूरा सफेद, शर्करा 10.88 प्रतिशत, अम्लता 0.41 प्रतिशत, खुशबू अच्छी, स्वाद मीठा होता है। बीज आकार में बड़ा और फलत मध्यम होती है।

4. मुजफ्फरपुर :– इसको लेट लार्ज रेड भी कहते हैं। इसके फल जून के चौथे सप्ताह में पकते हैं। फल आयताकार नुकीले होते हैं। फल की लम्बाई लगभग 3.75 सेन्टीमीटर व चौड़ाई लगभग 3.17 सेन्टीमीटर और फल का औसत भार 22.51 ग्राम प्रति फल होता है। गूदे की औसत मात्रा 16.56 ग्राम प्रति फल, गूदे में शर्करा 10.17 प्रतिशत, अम्लता 0.54 प्रतिशत होती है। गूदा मुलायम, सुगंधित एवं मीठा होता है। उपज प्रचुर मात्रा में होती है।

5. कलकतिया :– यह देर से पकने वाली किस्म है। इसके फल जुलाई के प्रथम सप्ताह में पकते हैं। फल आयताकार होते हैं। फल की लम्बाई व चौड़ाई लगभग 3.86 सेन्टीमीटर व 3.40 सेन्टीमीटर और फल आयताकार होते हैं। फल की लम्बाई व चौड़ाई लगभग 3.86 सेन्टीमीटर व 3.40 सेन्टीमीटर और फल का औसत भार लगभग 23.85 ग्राम होता है। छिलका मध्यम मोटाई का तथा टाइरियन रोज के रंग का होता है।

6. लेट सीडलेस :– इस किस्म को लेट बेदाना के नाम से भी जाना जाता है। इसके फलों के पकने का समय जून का अंत या जुलाई का प्रथम सप्ताह है। फल लम्बाई में लगभग 3.70 सेन्टीमीटर और चौड़ाई में 3.55 सेन्टीमीटर होते हैं। प्रति फल औसत भारत लगभग 25.4 ग्राम होता है। छिलका पतला तथा सिकुड़ा होता है। गूदा मुलायम, रसीला तथा क्रीमी रंग का होता है।

7. शाही :– यह जाति भी मुजफ्फरपुर की भांति आकर्षक अच्छे फलोत्पादन वाली है और बिहार में व्यवसायिक स्तर पर सफलतापूर्वक उगाई जा रही है। इसका फल भी जून के अन्तिम सप्ताह में पकता है। फल मीठा, बीज मध्यम होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसकी खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

8. रामनगर, गोला :– यह कलकतिया जाति का म्यूरेन्ट है। इसके फल जून के अन्तिम सप्ताह में पकते हैं। यह हर प्रकार से कलकतिया जाति से उच्च श्रेणी की है, तराई क्षेत्रों में काफी प्रचलित है। फलोत्पादन अच्छा है।

9. स्वर्णरेखा :– यह फल अनुसंधान केन्द्र, रॉची द्वारा विकसित अच्छे फलोत्पादन वाली किस्में हैं। जिसका फल जून के अंतिम सप्ताह में पकता है। फल मीठा, गूदा अधिक तथा बीज छोटा होता है।

प्रवर्धन :– लीची के पौधे कायिक प्रवर्धन द्वारा तैयार किये जाते हैं। गुणवत्ता बनाये रखने और जल्दी फलत प्राप्त करने के लिए पौधे कायिक प्रवर्धन द्वारा ही तैयार किये जाने चाहिए।

व्यवसायिक स्तर पर लीची के प्रवर्धन हेतु मातृ वृक्षों के प्रखण्ड की स्थापना की जानी चाहिए। जहां पर 3–5 मीटर की दूरी पर पौधे रोपे जाने चाहिए। स्थापना के तीन से पांच वर्ष के बाद इनमें गूंटी द्वारा पौध प्रवर्धन किया जाना चाहिए। शाखों की गहरी कटाई–छंटाई करते रहना तथा खाद एवं उर्वरक प्रयोग करते रहना चाहिए। इससे ओजस्वी शाखें नियमित रूप से गूंटी हेतु उपलब्ध रहेंगी।

कायिक प्रवर्धन में लीची के पौधे मुख्यतः गूटी द्वारा ही तैयार किये जाते हैं। इस विधि में एक वर्ष पुरानी स्वस्थ शाखा पर किसी स्वस्थ आंख के नीचे लगभग 3 सेन्टीमीटर चौड़ी छाल तेज चाकू से गोलाई में उतारकर उसके चारों ओर पानी में भिगो कर मॉस घास लपेटकर ऊपर से पालीथीन बाँध दी जाती है। गूटी बाँधने के 45 से 60 दिन के अन्दर जड़ें निकल आती है। इसके बाद गूटी को पेड़ से काटकर अलग कर लेते हैं तथा घने छायादार स्थान में जड़ें निकालने वाली वृद्धि नियामकों जैसे रूटीन या सेरेडाक्स 0.5 प्रतिशत या आई.ए.ए., आई.बी.ए. और एन.ए.ए. आदि में से किसी एक का प्रयोग 500 पी.पी.एम. की दर से पानी में घोल बनाकर तथा मॉस घास इस घोल में भिगोकर अथवा लैनोलीन

में वृद्धि नियामक का उपरोक्त दर से पेस्ट बनाकर छल्ला उतरी हुई जगह पर लगाकर ऊपर मॉस घास बांध कर किया जा सकता है। पॉलीथीन को दोनों सिरों पर लपेटकर बांध देते हैं। पालीथीन से श्वसन क्रिया होती रहती है। परन्तु पानी का वाष्पीकरण रूक जाता है। जिससे गूटी में पानी देने की आवश्यकता नहीं होती हैं।

गूटी जून से अगस्त तक बांधी जा सकती है। परन्तु गूटी बांधने का सर्वोत्तम समय जून का महीना है। इस माह में बांधी गई गूटी से सर्वाधिक सफलता मिलती है।

पौध रोपण :– उ0प्र0 में पौध लगाने का उत्तम समय जुलाई–अगस्त का महीना है। पौधे से पौधे और लाइन से लाइन की दूरी भूमि की उपजाऊ शक्ति के अनुसार 10 से 12 मीटर रखनी चाहिए। मई से जून के प्रथम सप्ताह तक 10 से 12 मीटर की दूरी पर एक मीटर व्यास और एक मीटर गहराई के गड्ढ़े खोदकर 8 से 15 दिन तक खुले रखने चाहिए।

सावधानियाँ :– जैसा कि ऊपर पहले ही बताया जा चुका है कि लीची के पौधों में मृत्यु दर बहुत अधिक होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि –

1. खेत में केवल वही पौधे लगाये जायें, जो पेड़ से गूटी काटने के बाद कम से कम 6 से 8 माह तक गमलों, पालीथीन की थैलियों अथवा रूट ट्रेनर अथवा भूमि में लगाये गये हों। क्योंकि लीची की गूटी पेड़ से अलग होने के पश्चात् बहुत कम जीवित रह पाती है और कभी–कभी 60 प्रतिशत जीवित नहीं रह पाते हैं। लीची माइकोराइजा कल्चर का भी अवश्य प्रयोग किया जायें।
2. रोपाई के समय पौधों को गड्ढ़े में रखकर उसके चारों ओर खाली जगह में बारीक मिट्टी डालकर इतना पानी डाल देना चाहिए कि गड्ढा पानी से भर जाये। इससे मिट्टी नीचे बैठ जायेगी और खाली हुए गड्ढे में पुनः बारीक मिट्टी डालकर गड्ढे को जमीन की सतह तक भर देना चाहिए।
3. पेड़ के चारों ओर मिट्टी डालकर मिट्टी को हाथ से नहीं दबाना चाहिए। क्योंकि इससे प्रायः पौधे की मिट्टी का खोल (पिण्डी) टूट जाती है। जिससे पौधे की जड़ें टूट जाती है और पौधा मर जाता है। इसलिए मिट्टी को पानी द्वारा उपरोक्त विधि से ही सेट कर देना चाहिए।

लीची का नया बाग लगाने हेतु गड्ढों को भरते समय जो मिट्टी खाद आदि का मिश्रण बनाया जाता है उसमें लीची के बाग की मिट्टी अवश्य मिला देना चाहिए। क्योंकि लीची की जड़ों में एक प्रकार की कवक जिसे माइकोराइजा कहते हैं पाई जाती है। इस कवक द्वारा पौधे अच्छी प्रकार फलते फूलते हैं और नये पौधे में भी कवक अथवा लीची के बाग की मिट्टी मिलाने से मृत्युदर कम हो जाती है। पौधों की रोपाई के बाद निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए ताकि पौधों में मृत्युदर कम हो सके और पौधे अच्छी प्रकार फल फूल सकें।

1. सर्दियों में पाले से बचाना आवश्यक है। जिसके लिए प्रति 10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। गर्मियों में लू से बचाने के लिए प्रति सप्ताह सिंचाई करते रहना चाहिए।
2. प्रारम्भिक अवस्था में पौधों को पाले व लू से बचाने के लिए पौधों को पूर्व की ओर से खुला छोड़कर शेष तीनों दिशाओं में पुवाल, गन्ने की पत्तियों और बांस की खप्पचियों अथवा अरहर आदि की डंडियों की मदद से ढंक देना चाहिए।
3. सूर्य की तेज धूप से बचाने के लिए तनों को चूने के गाढ़े घोल से पोत देना चाहिए।
4. उत्तर पश्चिम व दक्षिण दिशा में जमोया या शीशम आदि का सघन वृक्षारोपण वायु अवरोधक के रूप में किया जाना चाहिए।
5. फलत वाले पेड़ों में सर्दियों में 15 दिन के अन्तर और गर्मियों में फल बनने के पश्चात् लगातार आर्द्रता बनाये रखने के लिए जल्दी–जल्दी सिंचाई करते रहना चाहिए। इस समय पानी की कमी नहीं होनी चाहिए अन्यथा फल झड़ने और फटने का भय रहता है।

पोषण :– लीची के पौधों की अच्छी बढ़वार एवं अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खाद एवं उर्वरकों की उचित मात्रा देना भी आवश्यक है। लीची के पौधों को उनकी उम्र के अनुपात में निम्न तालिका के अनुसार पोषक तत्वों की मात्रा दी जानी चाहिए।

आयु (वर्ष में)	गोबर की खाद (किग्रा.)	नत्रजन तत्व (ग्राम)	फास्फोरस तत्व (ग्राम)	पोटाश तत्व (ग्राम)
1	10	100	50	100
2	20	200	100	200
3	30	300	150	300
4	40	400	200	400
5	50	500	250	500
6	60	600	300	600
7	70	700	350	700
8	80	800	400	800
9	90	900	450	900
10	100	1000	500	1000

दस वर्ष के पश्चात् पोषक तत्वों की मात्रा नहीं बढ़ाई जाती है और दस वर्ष वाली मात्रा को ही निश्चित कर दिया जाता है।

उर्वरकों की मात्रा दो बराबर भागों में बाँटकर आधी मात्रा जनवरी–फरवरी और आधी मात्रा सितम्बर–अक्टूबर में दी जानी चाहिए। खादों अथवा उर्वरकों को पेड़ के फैलाव तक छिड़क कर गुड़ाई एवं सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कॉपर सल्फेट और जिंक सल्फेट भी 25 ग्राम प्रति पेड़ प्रति वर्ष आयु के अनुसार दिया जाना चाहिए, जो दस वर्ष की आयु पर निश्चित कर दिया जाता है। बोरान भी बोरेक्स के रूप में 25 ग्राम प्रति पेड़ प्रति वर्ष आयु के आधार पर पहले चार वर्ष छोड़कर पाँचवें वर्ष से देना प्रारम्भ करते हैं और दस वर्ष की आयु पर निश्चित कर देते हैं। एक पूर्ण पेड़ जिसकी आयु दस वर्ष या इससे अधिक हैं, के लिए कॉपर सल्फेट, जिंक सल्फेट व बोरेक्स प्रत्येक की 250 ग्राम मात्रा आवश्यक होती है। बोरेक्स पाँचवें वर्ष से जो प्रारम्भ करते हैं, तो उसकी मात्रा 25 ग्रा0 x 5 वर्ष = 125 ग्राम प्रति पेड़ से प्रारम्भ करते हैं और आयु के अनुसार दस वर्ष तक बढ़ाते हैं।

अन्तराशस्य फसलें :– लीची में फलत 5–6 वर्षों बाद प्रारम्भ होती है। प्रारम्भिक वर्षों में आड़ू, अलूचा, अमरूद, दलहनी तथा पुराने बाग में हल्दी, सूरन आदि की खेती की जा सकती है।

सिंचाई एवं निकाई–गुड़ाई :– जलवायु और मिट्टी की किस्म के अनुसार लीची के बाग की सिंचाई की जानी चाहिए। बलुई मिट्टी में जल्दी–जल्दी और चिकनी मिट्टी में कुछ देर से सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार नम जलवायु में कम और खुश्क जलवायु में अधिक अर्थात् बार–बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। उत्तर भारत में वर्षा के बाद सर्दियों में पाले से बचाने के लिए उस समय सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए, जब पाला पड़ने का भय हो। साधारण अवस्था में जाड़े में दो सिंचाई पर्याप्त है। फरवरी से जून तक 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करना आवश्यक है। फलों के पकने के समय भी लगातार आर्द्रता बनायें रखने के लिए बार–बार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। छोटे पौधों को गर्मियों में हर सप्ताह तथा जाड़े में हर 15 दिन बाद सींचना आवश्यक है।

बाग को खरपतवारों से बचाना आवश्यक है। खरपतवारों के अधिक होने से छोटे पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा बड़े पेड़ों में कीट एवं व्याधियों का प्रकोप अधिक हो जाता है, क्योंकि गर्मी सर्दी से बचने के लिए कीट खरपतवार में छिप जाते हें और अपना संबर्धन करते रहते हैं। दूसरे सूर्य की धूप जमीन तक न पहुँच पाने के कारण वहाँ पर कवक जनित बीमारियाँ पनपती रहती है। इसलिए खरपतवारों का नियंत्रण भी आवश्यक है। इनके नियंत्रण के लिए वर्षा के बाद सितम्बर के महीने में हल्की जुताई कर देनी आवश्यक है। इसी जुताई पर खाद भी दिया जाना चाहिए। गर्मियों के दिनों में चूंकि बार–बार सिंचाई करनी पड़ती है, इसलिए उन दिनों में फलों और पेड़ों को कीटों और व्याधियों से बचाने के लिए एक या दो बार

हल्की जुताई कर खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

तुड़ाई एवं उपज :– किस्म के अनुसार लीची के फल पकने के समय गुलाबी, पीला, पीलापन लिए हरे हो जाते हैं तथा उनके छिलके पर उपस्थित ग्रन्थियां चपटी हो जाती हैं। लीची के फलों को टहनी में गुच्छों सहित तोड़ना चाहिए। इसमें गुच्छों को रखने व ले जाने में आसानी हो जाती है। इसमें फल अच्छे तथा ठीक अवस्था में रहते हैं। फलों के गुच्छे टोकरियों में पत्तियां बिछाकर उन पर रखे जाते हैं और इसी प्रकार बेचने हेतु बाजार ले जाते हैं। फलों को यदि दूर के बाजारों में भेजना हो, तो फलों पर पूरा रंग आने के पहले ही तोड़ लेना चाहिए तथा कोरूगेटेड डिब्बों में पैक कर बाजार भेज देना चाहिए। फल तोड़ने के 24 घन्टे बाद रंग बदलने लगते हैं तथा 3–4 दिन बाद कत्थई रंग के हो जाते है।

गूटी द्वारा तैयार पौधे 5 से 6 वर्षों बाद फलना प्रारम्भ कर देते हैं। लीची में फूल फरवरी–मार्च महीने में आते हैं तथा फल मई के अन्तिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम/द्वितीय सप्ताह तक पकते हैं। लीची का पेड़ लगभग 20 वर्ष में पूर्ण विकसित हो जाता है और एक पूर्ण विकसित पेड़ से एक से डेढ़ कुन्तल फल प्राप्त हो जाते हैं।

रोग एवं कीट नियंत्रण :–

1. लीची का लीफ रोलर :– जुलाई से सितम्बर तक नई पत्तियां निकलने पर इस कीड़े की गिडार पत्तियों के सिरों का धागे जैसे पदार्थ से बांध कर अंदर की ओर मोड़ देती है जिससे पत्तियां गोल दिखाई पड़ने लगती हैं और गिडार अन्दर ही पत्तियों को खाती रहती है। इसकी रोकथाम हेतु 0.30 प्रतिशत डायजिनान के दो छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करना चाहिए।

2. लीची लीफ माइनर :– पत्तियों के दोनों सतहों के बीच कीड़े की गिडार सुरंग बनाती हुई आगे बढ़ती रहती है। गिडार पूर्ण अवस्था प्राप्त करने के उपरान्त एक स्थान पर सफेद झिल्ली के अन्दर प्यूपा में बदल जाती है। इस कीट का आक्रमण प्रारम्भ होने पर डाईमिथोएट 2 मिली0/ली0 पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीड़े की रोकथाम की जा सकती है।

3. लीची फ्रूट बोरर :– इसकी गिडार फलों में छेद कर देती है, जिसके कारण फल अन्दर ही अन्दर खराब हो जाता है और फल की बढ़वार रूक जाती है। कभी–कभी अधिक प्रकोप होने पर फल सूख कर भी गिरने लगते हैं। इस कीट के नियंत्रण हेतु डाईमिथोएट 2 मिली0/ली0 पानी अथवा डायक्लोरोवास 1 मिली0/ली0 पानी की दर से घोल बनाकर फल बनने के पश्चात् एक माह के अन्तर पर पर्णीय छिड़काव किया जा सकता है।

4. लीची माइट :– यह एक छोटे आकार का कीट है, जो पत्तियों की निचली सतह पर चिपका रहता है और पत्तियों का रस चूसता रहता है। यह अपना मल पत्तियों की निचली सतह पर छोड़ता रहता है, जो लसलसा पदार्थ होता है। इससे पत्तियों के स्टोमेटा बन्द हो जाते हैं और पेड़ की वृद्धि एवं फलत पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस अष्टपदी के नियंत्रण हेतु मिथाइल पैराथियान 1 मिलीलीटर या डाईमिथोएट 2.0 मिलीलीटर + 2 ग्राम घुलनशील गंधक प्रति लीटर पानी में घोलकर पर्णीय छिड़काव किया जा सकता है।

5. मिलीबग :– आम के पेड़ों के साथ लगे लीची के पेड़ों पर इस का प्रकोप देखा गया है। यह कीट फूलों तथा प्ररोहों का रस चूस कर इनकों निश्क्रिय बना देता हैं, जिससे लीची के फल भी गिरने लगते हैं। इसके नियंत्रण हेतु दिसम्बर के महीने में पेड़ के तने पर 400 गेज की 25 सेमी0 चौड़ी पालीथीन शीट लपेटकर दोनों सिरों को रस्सी से कस कर बांध दिया जाता है, जिससे कीट पेड़ पर ऊपर नहीं चढ़ पाते हैं और वह पॉलीथीन से फिसल कर नीचे गिर जाते हैं। मई जून के महीने में पेड़ के नीचे थालों में फालीडाल 5 प्रतिशत धूल डालकर गुड़ाई करने से तथा अक्टूबर माह में बाग की गुड़ाई करने से इस कीट का अच्छा नियंत्रण होता है।

शेष पृष्ठ सं० 41--पर

औषधीय खेती और उत्तर प्रदेश

विवेक कुमार सिंह
शोध छात्र
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

सुप्रिया कुमारी
शोध छात्र
सूक्ष्म जीव वि0 और किण्वन प्रौ0 वि0
शियाट्स इलाहाबाद

मुकेश कुमार जाट
एम0एस0सी0 छात्र
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

प्रो० विपिन एम० प्रसाद
विभागाध्यक्ष
उद्यान विज्ञान विभाग
शियाट्स इलाहाबाद

औषधीय पौधों की खेती भारत वर्ष में बहुत ही प्राचीन काल से की जा रही है। ऋग्वेद में भी कई औषधीय पौधों का विवरण मिलता है, जो प्रमाणित करता है कि भारतवंशी कितने पहले से इनके बारे में जानते थे। कुछ अन्य स्रोत जैसे चरक संहिता में 1100 पौधों का विवरण प्राप्त है।

अगर आज के समय की बात करें, तो who के अनुसार करीब 70 प्रतिशत जनता को घरेलू या पारंपरिक इलाज पर निर्भर होना होता है। जो कि मुख्यतया पौधों से प्राप्त होता है। चीन के करीब 5000 पौधों को औषधि के रुप में प्रयोग किया जाता है जबकि भारत में यह आंकड़ा 7500 से भी ज्यादा है।

भारत में औषधि की खेती काफी तेजी से बढ़ रही है। वर्ष 2010–11 में 4.30 लाख हेक्टेयर से भी ज्यादा के क्षेत्र में खेती की गयी और 5.50 लाख टन उत्पादन प्राप्त हुआ।

दरअसल औषधीय खेती के बढ़ने का मुख्यतः कारण आयुर्वेद व होम्योपैथिक दवाओं के चलन का बढ़ने से है। क्योंकि इनका बाजार आज 10000 करोड़ (होम्योपैथिक) तथा 7000 करोड़ (आयुर्वेदिक) को पार कर चुका है। भारतीय पर्यावरण व वन मंत्रालय ने 9500 पौधों को फार्मा क्षेत्र के लिए सूचीबद्ध किया है। अब हम उत्तर प्रदेश में इसके क्षेत्र व संभावनाओं की बात करते हैं, तो उत्तर प्रदेश का औषधीय खेती के क्षेत्र में प्रथम स्थान (133.70 हजार हेक्टेयर NBH) पर है। दूसरा स्थान (215.10 हजार हेक्टेयर NBH) राजस्थान का है। परंतु उत्पादन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का आठवां स्थान (13.400 हजार मीट्रिक टन 2.5 प्रतिशत) है। यह हमारे प्रदेश के विशेषज्ञों व योजनाकर्ताओं पर सवालिया निशान लगाता है।

उत्तर प्रदेश औषधीय खेती के लिहाज से सर्वोत्तम है। परंतु आवश्यकता है, अच्छी योजनाओं की प्रशिक्षण संस्थाओं की जैसे कि सीमैप लखनऊ। अन्त में मैं अपने सभी किसान भाइयों व विशेषज्ञ समूह संस्थान आदि से अनुरोध करता हूं कि औषधीय खेती की उन्नत विधियां विकसित व विस्तारित करें, जो कि अब तक नहीं हो रहा था। जिससे कि उत्तर प्रदेश उत्तम प्रदेश बनाया जा सके।

पृष्ठ सं० 06--का शेष

कुट्टी काटा हुआ चारा खूब दबा–दबा कर भर लेते हैं ताकि बरसात का पानी ऊपर न टिक सके। फिर इसके ऊपर पोलीथीन की शीट बिछाकर ऊपर से 18–20 सेमी मोटी मिट्टी की पर्त बिछा दी जाती है। इस परत को गोबर की चिकनी मिट्टी से लीप दिया जाता है। दरारें पड़ जाने पर उन्हें मिट्टी से बन्द करते रहना चाहिए ताकि हवा व पानी गड्ढे में प्रवेश न कर सकें। लगभग 45–60 दिनों में साइलेज बनकर तैयार हो जाता है। जिसे गड्ढे के एक तरफ से खोलकर मिट्टी व पोलीथीन शीट हटाकर आवश्यकतानुसार पशु को खिलाया जा सकता है। साइलेज निकालकर गड्ढे को पुनः पोलीथीन शीट व मिट्टी से ढंक देना चाहिए। शुरू में साइलेज को थोड़ी मात्रा में अन्य चारों के साथ मिलाकर पशु को खिलाना चाहिए तथा धीरे–धीरे पशुओं को इसका स्वाद लग जाने पर इसकी मात्रा 20–30 किग्रा प्रति पशु तक बढ़ाई जा सकती है।

नीति निशान्त
शोध छात्रा
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली।

नलिनी चन्द्रा
पी0एच0डी0 छात्रा
फैमिली रिसोर्स मैनेजमेंट
इथिलिण्ड स्कूल ऑफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

आज तक की तमाम खोजों के बाद भी हम पृथ्वी के समान कोई अन्य ग्रह ढूंढ़ने में असफल ही रहे हैं। अंतरिक्ष में अब तक हम कई ग्रहों का पता लगा चुके हैं, लेकिन इनमें से कोई भी दूर–दूर तक पृथ्वी जैसा नहीं है। जहां जीवन संभव हो। पृथ्वी पर जीवन अनेक कारणों से संभव हो सका है जैसे – सूर्य का पृथ्वी से एक खास दूरी पर होना, जिससे यहां पर जीवन की परिस्थितियां उत्पन्न हुईं। अगर ऐसा नहीं होता और पृथ्वी यदि सूर्य के निकट होती, तो बहुत गर्म, अगर दूर होती, तो बहुत ठंडी होती। किन्तु प्रकृति ने हमें सौगात के रूप में ऋतु, वनस्पति, मिट्टी, जल जैसे संसाधन वरदान के रूप में दिये हैं।

किन्तु पर्यावरण आज विश्व की गम्भीर समस्या हो गई है। प्रकृति को बचाना अब हमारी ज्वलंत प्राथमिकता है। लेकिन प्राकृतिक सन्तुलन को विकृत करने में स्वयं मानव का ही हाथ है। पर्यावरण और प्रदूषण मानव की पैदा की हुई समस्या है। प्रारम्भ में पृथ्वी घने वनों से भरी थी। लेकिन जनसंख्या वृद्धि और मनुष्य के सुविधाभोगी मानस ने, बसाहट, खेती–बाड़ी आदि के लिए वनों की कटाई शुरू की। उसने अपने आवास स्थान के लिए वनों का नाश ही किया है। अब एक मामूली झोपड़ी में आराम नहीं मिला, तो उसने पक्के घरों, बिल्डिंगों का निर्माण किया। मनुष्य की बढ़ती आबादी ने नदियों का ह्रास करना आरंभ कर दिया। औद्योगिकीकरण के दौर में मानव ने पर्यावरण को पूरी तरह अनदेखा कर दिया। जीवों के आश्रय स्थल उजाड़ दिये गये। न केवल वन सम्पदा और जैव सम्पदा का विनाश किया, बल्कि मानव ने जल और वायु को भी प्रदूषित कर दिया। कभी ईंधन के नाम पर तो कभी इमारतों के नाम पर। कभी खेती के नाम पर तो कभी जनसुविधा के नाम पर, मानव प्राकृतिक संसाधनों का विनाशक दोहन करता रहा।

ये वन ही हैं, जो हमारे पर्यावरण को बचाए हुए हैं। परन्तु मनुष्य द्वारा इनके अत्याधिक दोहन से जलीय, थलीय एवं वायुमंडलीय प्रदूषण बढ़ गया है। वनों के कटाव से भूमि की कटाव समस्या और रेगिस्तान के प्रसार की समस्या सामने आई है। वनों के अत्यधिक कटाव ने जंगली जानवरों के अस्तित्व को संकट में डाला है। आज पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण के कारण नित नई बीमारियां अपना मुंह फाड़े मनुष्य को काल का ग्रास बनाने के लिए तैयार हैं। एक बीमारी से हम निजात पाते

नहीं कि नई बीमारी आ खड़ी होती है। दूसरी ओर इन प्राकृतिक आपदाओं ने कदम दर कदम नित नई समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। बढ़ते प्रदूषण ने पर्यावरण में मौसम सम्बन्धी परेशानियां खड़ी कर दी हैं। पेड़ों की कमी का परिणाम यह हो रहा है कि वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। पृथ्वी का तापमान अधिक हो गया है। मौसम और ऋतुओं पर भी असर देखने को मिल रहा है। गर्मी के मौसम में अत्यधिक गर्मी और ठंडी में ठंड अधिक पड़ने लगी है। किसी मौसम में अत्याधिक बरसात से बाढ़ की स्थिति बन जाती है और हजारों जानों–माल का नुकसान होता है। बारिश न होने की वजह से गांव के गांव सूखे की चपेट में आ जाते हैं। इससे हमारी प्राकृतिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो रही है। वन सम्पदा में पशु–पक्षी आदि, प्राकृतिक सन्तुलन के अभिन्न अंग होते हैं। प्रकृति की एक समग्र जैव व्यवस्था होती है। उसमें मानव का स्वार्थपूर्ण दखल पूरी व्यवस्था को विचलित कर देता है। मनुष्य को कोई अधिकार नहीं प्रकृति की उस व्यवस्था को अपने स्वाद, सुविधा और सुन्दरता के लिए खण्डित कर दे। अप्राकृतिक रूप से जब इस कड़ी को खण्डित करने का दुष्कर्म होता है, प्रकृति में विनाशक विकृति उत्पन्न होती है, जो अन्ततः स्वयं मानव अस्तित्व के लिए ही चुनौती बन खड़ी हो जाती है। मनुष्य ने आज अपने स्वार्थ के लिए पर्यावरण को ताक पर रखकर उन्नति तो की, लेकिन यदि अब भी जागरूक होकर पर्यावरण पर ध्यान नहीं दिया गया तो शायद अगली पीढ़ियां हमें कभी काम नहीं करेंगी।

पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ तथ्य व सूचनाएं :–

1. वृक्ष कार्बन डाई आक्साइड का अवशोषण कर शुद्ध आक्सीजन उत्सर्जित करते हैं।
2. पेड़ पौधे मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
3. 12 फिट लम्बे 20 पेड़ों से एक टन कागज तैयार होता है।
4. कम–से–कम दस वर्षों में जलवायु नियंत्रण हेतु 14 बिलियन वृक्षारोपण संपूर्ण धरती की आवश्यकता है।
5. प्रतिदिन लगभग 20 हजार हेक्टेयर वृक्षों व जंगलों में कटाई जारी है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु कुछ महत्वपूर्ण प्रयास :–

1. अपने नगर को साफ रखने में खुद पहल करें व दूसरों को भी प्रेरित करें।
2. प्लास्टिक की थैली इधर–उधर न फेंकते हुए नियत स्थान पर फेंके तथा प्लास्टिक थैली का इस्तेमाल कम से कम करें।
3. शहरी व ग्रामीण जगह प्रत्येक घर के सामने एक वृक्ष अवश्य लगाएं व लगवाने हेतु प्रेरित करें।
4. ए.सी., फ्रिज व जनरेटर का कम से कम इस्तेमाल करें ताकि ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन से ओजोन परत के नुकसान को कम किया जा सके।
5. प्रत्येक नागरिक वृक्ष लगाये ऐसा सरकार सुनिश्चित करे और हम बच्चों को भी प्रेरित करें।

वृक्षारोपण हेतु निम्न प्रकार के उपयोगी वृक्ष श्रेष्ठ हैं :–

1. करंज – दलहनी पौधा (पशु चारा, दवा, तेल, ईंधन में उपयोगी)।
2. अर्जुन – औषधि, पशुचारा, रेशम कीट पालन ।
3. बहेड़ा – छायादार (औषधि, फल, चारा) ।
4. इमली – टिकाऊ लकड़ी
5. आंवला – आयुर्वेदिक
6. शहतूत – रेस पालन
7. नीम – छायादार वृक्ष तथा बहुपयोगी

आप सभी से एक प्रश्न :– एक प्रश्न हमें खुद से पूछना चाहिए। हमने अपने जीवन में अब तक पर्यावरण संरक्षण के लिए क्या किया है? क्या हमने हमारी उम्र की संख्या के बराबर वृक्षारोपण किया है? अगर नहीं तो आज भी शुरुआत की जा सकती है?

हमें चाहिए कि हम इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए अपनी आदतों को सुधारें व अपनी व्यर्थ की प्रगति पर लगाम लगाएं। हर मनुष्य प्रगति करना चाहता है पर वो प्रगति किस काम की, जो आगे चलकर हमारे लिए ही मौत का सामान तैयार करे। यह हमारे हित में तो हैं ही नहीं अपितु हमारे साथ रह रहे अन्य जीव–जंतु के हित में भी नहीं है। हमारा यह नैतिक कर्तव्य बनता है कि हम कर्तव्यों का निर्वाह करें। अपने इस जीवनदायी वनों का व्यर्थ में दोहन न करें। उसे एक सहचरी की तरह प्यार व सम्मान दें। अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए अत्यधिक पेड़ लगाएं। वनों के कटाव को रोकें और वातावरण में प्रदूषण को न फैलाएं। वनों के विनाश को रोकने के लिए उचित कानून बनाएं। इस पृथ्वी को दुबारा स्वर्ग की तरह सुंदर बना पाएंगे।

शुद्ध खाना सबको मिले

अजरा फातमा
शोध छात्रा
फैमिली रिसोर्स मैनेजमेन्ट
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

डा0 रजिया परवेज
एसोसिएट प्रोफेसर
फैमिली रिसोर्स मैनेजमेन्ट
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

आज के दौर में लोगों के पास इतना वक्त नहीं है कि वे सामान खरीदते समय उस सामान की अच्छे से जांच करें।

खाने–पीने की चीजों में मिलावट का किस्सा नया नहीं हैं। लेकिन इन दिनों इस तरह के मामले कुछ ज्यादा ही सामने आने लगे हैं। सेहत को ताक पर रखकर मिलावटी चीजें बाजार में खुले आम बिक रही हैं और ये मीठा जहर हमारे पेट में जा रहा है और इन सब चीजों की वजह से अब लोगों में कैंसर, लिवर से संबंधित बीमारियॉ आम (कॉमन) होती जा रही हैं। नकली और मिलावटी चीजें बाजार में बिना किसी रोक टोक से बेची जा रही हैं। साधारण नमक से लेकर दूध घी तक में मिलावट हैं। पैसा हम भले ही पूरा देंगे पर हमें सामान सही मिलेगा इसकी कोई गांरटी नहीं है।

देखें समझें फिर खरीदें –

- कोई भी उत्पाद खरीदते समय उसका बिल या रसीद लें। वस्तु सम्बन्धित कोई वारन्टी या गारन्टी कार्ड लेना न भूलें।
- छपी हुई कीमत से अधिक में कोई वस्तु न खरीदें।
- पैकिंग माल सील बंद ही लें।
- कोई भी सामान लेने से पहले उस पर दी गई शर्तो और निर्देशों को जरूर पढ़ें और पैकेटों पर एगमार्क और आईएसआई के मार्क को जरूर देखें।
- सामान लेते समय नाप, माप और तौल पर नजर रखें।
- सामान पर एक्सपायरी डेट को देखना न भूलें।
- मिठाई कभी भी डिब्बे सहित न तौलवाए। पहले डिब्बे की तौल करवाएं फिर मिठाई लें।

खुद जाचें, कितनी है मिलावट –

- आटें में अक्सर चाक पाउडर मिक्स कर दिया जाता है। इसकी जॉच के लिए आटे के सैंपल को थोड़े से लिक्विड हाइड्रोजन क्लोराइड में मिलाएं। अगर इस मिश्रण में हल्के बुलबुले उठते हैं या उनके बनने की आवाज आती है, तो इसका मतलब हैं कि आटे में चॉक मिला है।
- दाल खरीदते समय उसके आकार को देखें। मिलावटी दालें कुछ छोटी होती है और उनमें असली की अपेक्षा चमक और पीलापन भी ज्यादा होता है।
- शुद्ध शहद पानी में डालने पर तल में बैठ जाता हैं। काजल की तरह ऑखों में डालने पर आखों में जलन होती है।
- मिठाइयों पर चॉदी के वर्क की जगह, अगर एल्यूमिनियम का इस्तेमाल हुआ हैं, तो इसकी पहचान के लिए वर्क को आग के पास ले जाएं। अगर चॉदी हुआ तो पूरा जल जाएगा, एल्यूमिनियम होने पर वर्क सफेद रंग का होने के साथ ही मुड़ने लगेगा।
- दूध में स्टार्च और यूरिया की पहचान के लिए दूध में दो बूंद टिंचर आयोडिन डालें। अगर एक मिनट बाद दूध का रंग नीला हो जाए, तो दूध मिलावटी हैं।

ऐसा सब बताकर हमारा मकसद किसी को डराना नहीं हैं। बल्कि मिलावट और नकली चीजों के प्रति आपको जागरूक करना हैं।

दुधारू पशु पालन

ग्रामीणों के रोजगार का एक लाभकारी व्यवसाय

भरत महतो
रिसर्च स्कालर (ए0एन0)
एस0 एस0 ए0 एच0 एण्ड डेयरिंग
शियाट्स, इलाहाबाद

दीपक एस0 भदौरिया
रिसर्च स्कालर (एल0मी0एम0)
एस0 एस0 ए0 एच0 एण्ड डेयरिंग
शियाट्स, इलाहाबाद

प्रो0 (डा0) नीरज
अधिष्ठाता
एस0 एस0 ए0 एच0 एण्ड डेयरिंग
शियाट्स, इलाहाबाद

भारतवर्ष मूलतः एक कृषि प्रधान देश है तथा अधिकतर प्रतिशत कृषक परिवार खेती तथा पशुपालन पर ही निर्भर रहते हैं। कृषि के साथ–साथ दुग्ध उत्पादन को एक व्यवसायिक रूप देकर हमारे कृषक अपने जीवन स्तर को और अधिक ऊँचा उठा सकते है। हमारा पशुधन राष्ट्र की आय की दृष्टि से मेरूदण्ड का कार्य करता है। अधिकतर किसान दो–चार पशु रखते है तथा उनकी रख–रखाव में सालों भर लगे रहते है, यदि पशुओं की उत्पादन क्षमता पर ध्यान दिया जाये और फसल उत्पादन के साथ–साथ अच्छी नस्ल की गाय या भैंस पालकर डेयरी फार्म चलाया जाये, तो काफी मुनाफा कमाया जा सकता है। भारतवर्ष अभी दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर आ गया है, फिर भी इस व्यवसाय को आगे बढ़ने की अपार संभावना है। डेयरी एक ऐसा व्यवसाय है, जो ग्रामीण वर्ग को सदैव रोजगार के अवसर दे सकता हैं। अगर कृषक वैज्ञानिक पद्धति में पशुओं का नस्ल सुधार, अच्छे प्रबन्ध, संतुलित आहार प्रबन्धन, तथा पशुओं को स्वस्थ एवं निरोग रखने पर समुचित ध्यान देकर इस व्यवसाय को करें, तो आशातीत लाभ अवश्य कमाया जा सकता है, इस व्यवसाय से संबंधित प्रशिक्षण व्यवसाय प्रारम्भ करने से पहले ले लेना उचित रहता है। यह प्रशिक्षण अधिकांश कृषि विश्वविद्यालयों, निजी संस्थानों तथा कृषि विज्ञान केन्द्रों में निःशुल्क प्रदान किया जाता है।

नस्ल का चुनाव :– इस व्यवसाय में उचित नस्ल का चुनाव करना सबसे महत्वपूर्ण होता है। कृषक अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए विदेशी संकर नस्ल के पशु या भारतीय दुधारू नस्ल के पशुओं का चुनाव कर सकते हैं। देशी दुधारू नस्लों का पालन संकर नस्लों की अपेक्षा सस्ता, सरल एवं अधिक आय अर्जित करने वाला है। देशी गायों के संकरण हेतु जिन विदेशी नस्ल के सांड़ों का उपयोग हमारे देश में किया जाता है, वे निम्नवत् हैं :–

1. होलस्टिन फ्रीजियन
2. जर्सी
3. ब्राउन स्विस
4. रेड डेन

होलस्टिन फ्रीजियन तथा जर्सी के संकर नस्ल भारतीय वातावरण में अन्य संकर नस्लों की अपेक्षा अच्छी तरह से अनुकूलित हो जाते है तथा अधिक लाभकारी साबित हो रहें है।

भारतीय डेयरी किस्म की मुख्य नस्लें :–

1.	साहीवाल	4.	देवनी
2.	लाल सिन्धी	5.	थारपारकर
3.	नीर	6.	हरियाना

भारत में विकसित कुछ संकर नस्लें :–

नाम	भारतीय नस्ल की गाय	विदेशी नस्ल का साँड़
करनस्विस	साहिवाल एवं रेड सिन्धी	ब्राउन स्विस
करनफ्रीज	थारपारकर	होलस्टिन फ्रिजीयन
जरसिन्ध	रेडसिन्धी	जर्सी
फ्रिजवाल	साहिवाल	होल्स्टीन फ्रिजीयन

पशु पोषण :– पशुपालन में होने वाले कुल खर्च का लगभग 65–70 प्रतिशत खर्च, पशुपोषण में होता है। अतः इस पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती हैं। साधारणतः पशुओं का शारीरिक रख–रखाव, प्रजनन एवं

क्षमता के अनुसार उत्पादन के लिए संतुलित आहार देना आवश्यक होता हैं।

संतुलित आहार :–

– संतुलित आहार, वह आहार है जो मौसम विशेष में पशु की आवश्यकता के अनुसार उपयोगी हो तथा उचित अनुपालन में पोषक तत्वों से पूर्ण हो। पशुओं को शारीरिक भार का 2–3 प्रतिशत कुल शुष्क पदार्थ दिया जाता है, इसका 2/3 भाग चारे से 1/3 भाग दाना मिश्रण से दिया जाता है। चारा में 2/3 भाग सूखे चारा से दिया जाता है तथा 1/3 भाग हरे चारा से दिया जाता है। दलहनी चारे का अधिक प्रयोग करना चाहिए। गर्भकाल के अंतिम 2–3 महिनों में भ्रूण का विकास जब चरम सीमा पर होता है, गायों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। गर्भावस्था के अन्तिम 3 महीनों में दाने की मात्रा 1/2–1 किलोग्राम बढ़ा देना चाहिए। इससे गर्भ में पल रहे भ्रूण का सही विकास होता है तथा अगले दुग्धकाल के लिए आवश्यक पोषक तत्व शरीर में स्वतः ही संचय होते रहते है।

– स्वच्छ पानी भरपूर मात्रा में पिलाना चाहिए। एक गाय जो प्रतिदिन 5 लीटर दूध देती है। उसे प्रतिदिन लगभग 35–40 ली0 पीने के पानी की जरूरत होती है।

– आहार में अचानक परिवर्तन नहीं करना चाहिए, इससे ''अफारा'' होने की संभावना रहती है।

– प्रत्येक गाय या भैंस को प्रतिदिन 40–50 ग्राम नमक और 25–30 ग्राम खनिज मिश्रण दिया जाना चाहिए।

– बाजार में बिकने वाली संतुलित आहार से घर मे ही दाना मिश्रण बनाना अधिक लाभकारी, पोषक तथा सस्ता होता है। दाना मिश्रण बनाने के लिए निम्न मात्रा मे विभिन्न खाद्य पदार्थो को मिलाना चाहिए।

अनाज जैसे (मकई, दर्रा, बाजरा)	– 25–35 प्रतिशत
खल्ली	– 25–35 प्रतिशत
चोकर	– 10–25 प्रतिशत
दाल चुन्नी	– 5–10 प्रतिशत
खनिज मिश्रण	– 1–2 प्रतिशत
नमक	– 1–2 प्रतिशत

आहार चयन :– पशुओं में चरते समय चयन की प्रवृत्ति पायी जाती है, अधिक प्रोटीन, खनिज, ऊर्जा एवं कम रेशे वाला चारा पशु ज्यादा पसंद करते है। क्षेत्र की जलवायु, भूमि, भूमि जल स्तर आदि कारक पशु की रूचि को प्रभावित करते हैं। अधिकांश पशु हरी पत्तियां पसन्द करते हैं। गोवंश एवं भेड़ बकरी के आहार में प्रोटीन 10–12 प्रतिशत तथा 12–16 प्रतिशत क्रमशः होती है। गोवंश की गर्मियों के दिन में कम चराई होती है तथा सर्दियों के दिनों में अधिक चराई होती है। जब चरने के लिए चारा कम होता है, तो पशु अधिक समय तक चरता है।

यदि पशुपालक पूर्ण रूप से चारे पर ही निर्भर है, तो चारागाहों में विशेष रूप से गर्मियों में रात की चराई की व्यवस्था की जा सकती है। देशी गायें संकर एवं विदेशी गायों की तुलना में गर्म मौसम में भी चर सकती है।

चारा उत्पादन की आवश्यकता तथा तकनीकियां:– एक किसान यदि 50–60 लीटर प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन का फार्म स्थापित करना चाहता है, तो उसे लगभग 15–16 देशी गायें या 10–12 भैसें या 8–10 संकर गायें रखनी पड़ेगी। यदि अधिक उत्पादन क्षमता वाले पशु है, तो कम पशुओं से भी काम चल सकता है। उतने पशुओं के लिए कृषक को प्रतिदिन 5–6 कुंतल हरे चारे की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त सूखे चारे एवं दाने की भी आवश्यकता होगी।

चराई व्यवस्था :– घासें रूचिकर, पोषक तथा अधिक उत्पादन देने वाली होनी चाहिए। चराई की विकसित उन्नत प्रणालियां निम्नलिखित है।

1. **लगातार चराई पद्धति :–** इस पद्धति में पशु चारा क्षेत्र में एक साथ चरते हैं।
2. **आस्थगित परिवर्तित चराई :–** पूरी चारागाह को कई भागों में बाँटा जाता है तथा एक भाग बढ़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। जबकि अन्य तीन भाग में 10–15 दिन के अन्तराल पर चराई की जाती है, बाद में एक भाग में पशुओं को चराया जाता है।
3. **परिवर्तित चराई :–** पशु चारागार के सभी भागों में एक के बाद दूसरे में 10–15 दिन के अन्तराल पर चराई की जाती है।
4. **कट एण्ड कैरी :–** इस पद्धति में पशुओं को चारागाह में चरने के लिए नहीं छोड़ा जाता है, घास काटकर खिलायी जाती है।

डेयरी फार्म के प्रतिदिन की खपत से अधिक हरा चारा की उपज होने पर चारा संरक्षण एवं मूल्यवर्धन की विधियाँ अपनाई जा सकती है। जो कि निम्नवत् है तथा शत प्रतिशत लाभकारी भी है।

1. सूखे चारे तथा भूसे का यूरिया उपचार
2. साइलेज बनाना
3. हें बनाना
4. चारा के ब्लाक बनाना, इत्यादि

गर्भवती गायों की देखभाल :– गर्भावस्था में बच्चे की बढ़ोत्तरी को ध्यान में रखते हए गर्भवती गायों का प्रबन्ध विशेष रूप से आवश्यक होता है। गाय में गर्भकाल लगभग 280 दिन, भैसों में 310 दिन, भेड़ व बकरी में 150 दिनों का होता है। गर्भवती पशुओं की उचित देखभाल के लिए निम्नलखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

– जब गाय पांच या छः माह की गर्भावस्था में हो तो उसे कृमिनाशक दवा पिला देनी चाहिए।
– बच्चा देने के दो माह पहले ही दुग्ध लेना बन्द कर दें। जिससे गाय पूर्ण रूप से बिसुखी हो जाय। जिस दिन गाय पूरी तरह से बिसुख जाय, उस दिन थन को अच्छी तरह से साफ कर प्रत्येक बाँट/ छिमी में एन्टिबायटिक दवा पशु चिकित्सक की सलाह से चढ़ा देनी चाहिए। इससे बिसुखे समय में होने वाले थनैला बीमारी से बचा जा सकता है।
– बिसुखे गायों को दूर एवं ऊंचे–नीचे स्थान वाले चारागाह में चरने के लिए नहीं भेजना चाहिए अन्यथा जमीन पर चढ़ते–उतरते समय गर्भाशय स्थित बच्चे को धक्का लगकर उलट–पुलट हो जाने का डर रहता है।
– गर्भवती गायों को अन्य पशुओं के समूह में न रखें।
– गर्भवती गायों को पौष्टिक हरा–चारा एवं 1–1 किलोग्राम दाना मिश्रण, निर्वाह आहार के अतिरिक्त देना चाहिए।
– ब्याने के जब 15 दिन बाकी रहे, तो गर्भवती गाय को प्रसूति गृह में रखें तथा बिछावन के लिए सूखा पुआल प्रतिदिन लगाना चाहिए।
– गर्भवती गाय के बैठने का स्थान पीछे से आगे की ओर ढालनुमा हो, जिससे बैठने पर गर्भाशय बाहर आने का डर न रहें।
– बड़े फार्मों पर प्रजनन योग्य गायों की संख्या का 5 प्रतिशत प्रसव गृह (मैटरनिटी पैन) बनवाने चाहिए। जिसमें साफ पानी तथा खाने की व्यवस्था रहनी चाहिए। फर्श नियमित रूप से जीवाणुनाशक घोल से साफ करना चाहिए। फर्श पर फिसलन नहीं होनी चाहिए।

प्रसव के समय तथा बाद में गायों की देखभालः–

– गाय के प्रसव के समय एक प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति का रहना आवश्यक होता है।
– प्रसव के 3–4 दिन पहले से ही गाय को हल्का आहार दें।
– प्रसव के समय गाय को खुले क्षेत्र में (80–100 वर्ग फुट) में रखें।
– पशु के प्रसव का रिकार्ड रखना चाहिए, विशेष रूप से ऐसी परिस्थिति में जब कि पशु को पिछले प्रसव के दौरान कठिनाई आई हो।
– सामान्यतः ब्याने के 6–8 घण्टे के बाद जेर गिर जानी चाहिए। अगर उस समय तक जेर नहीं गिरे, तो पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
– बच्चा देने के बाद एक सप्ताह तक गाय को दाना मिश्रण न दें, इसके बदले गेहूं का चोकर दिया जा सकता है।
– बच्चा देने के बाद गाय को हल्का गर्म पानी ही पिलायें।

नवजात बछड़ों की देखभाल :– बछड़ों को स्वास्थ्य रखने के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

– गाय, भैंस के बच्चों के जन्म होने पर नाक, मुंह, कान तथा आंखों पर गर्भ की जो झिल्ली होती है, उसे जितना जल्दी हो सके साफ कपड़े या जूट के बोरे से साफ कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी देख लें कि बछड़े के मल तथा मूत्र का रास्ता है कि नहीं। अगर बछड़ा सांस नहीं ले रहा हो, तो उसे कृत्रिम तरीके से सांस देने की प्रक्रिया करनी चाहिए।
– बछड़े को साफ करने के बाद उसकी माँ के सामने रखना चाहिए, इससे माँ बछड़े को चाटेगी जिससे उसके शरीर में रक्त संचालन की क्रिया में सहायता पहुंचती है।

– बछड़े के नाभि नाल को 2.5 – 3 इंच के फासले पर नये ब्लेड या कैंची से काट देना चाहिए। कटे भाग में किसी एन्टीसेप्टिक घोल से साफ कर एन्टीबायोटिक मलहम लगाना चाहिए।
– बछड़े को हमेशा साफ तथा सूखे स्थान पर ही रखना चाहिए, अन्यथा कई तरह की संक्रमण आने की संभावना रहती है।
– बछड़े को जन्म के पश्चात् एक से दो घण्टे के भीतर उसके शरीर भार का 1/10 प्रतिशत फेनुस पिलाना चाहिए। फेनुस पिलाने से बछड़े के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है।
– 10 दिन के पश्चात् छोटे बछड़े को नरम हरे चारे जैसे– बरसीम, लोबिया, ज्वार, मक्खनघास आदि खिलाना शुरू करना चाहिए। चारे के साथ नमक तथा मिनरल मिश्रण बछड़े को प्रतिदिन देना चाहिए।
– सर्दी के मौसम में बैठने के स्थान पर बिछावन का प्रयोग करना चाहिए।
– नियमित रूप से कृमिनाशक दवा पिलानी चाहिए।

आवास व्यवस्था :– आवास ऐसा होना चाहिए, जिसमें पशु सभी मौसम में आराम से रह सके तथा किसी तरह की असुविधा पशु को अनुभव न हो।

गाय के लिए अनुशंसित स्थान :–

– गाय के खड़े रहने का स्थान 20–30 वर्ग फुट प्रति गाय।
– प्रसूति गृह 100–150 वर्ग फुट प्रति गाय।
– बीमार पशुओं के लिए 150 वर्ग फुट प्रति गाय।
– छोटे बछड़ों के लिए (3 माह से कम उम्र) 20–25 वर्ग फुट प्रति बछड़ा या बछिया।
– पशुशाला के आस–पास छायादार पेड़ लगाना चाहिए।
– पानी की आपूर्ति लगातार होती रहे, जिससे पशुओं को आवश्यकतानुसार पानी मिल सके।
– पशुशाला तथा उसके आस–पास के क्षेत्र की सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

प्रजनन :– हमेशा उन्नत नस्ल के साड़ों के साथ ही पाल दिलाना चाहिए। साड़ उपलब्ध नहीं रहने पर कृत्रिम गर्भाधान पद्धति का सहारा लेना चाहिए कृत्रिम गर्भाधान में कृषक मनचाहे नस्ल का चुनाव कर सकते है।

पशुरोग नियंत्रण के उपाय :– अपने पशुओं को स्वच्छ एवं स्वथ्य रखने के लिए पशु पालकों को उचित तरीकों से कुछ नियमों का पालन करना चाहिए जैसे–

– नियमित रूप से पशुशाला में कीटनाशी तथा जीवाणुनाशी दवाओं का छिड़काव करें।
– नियमित रूप से संक्रामक बीमारियों से बचाव के लिए टीकाकरण करें।
– कीटनाशक दवाओं को प्रयोग नियमित अन्तराल में करना चाहिए।
– बीमारी की अवस्था में तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

अतः उपरोक्त बतलाई जानकारी को चलन में लाकर हमारे किसान भाई एवं पशु पालक निश्चित ही हमारे देश में दुग्ध उत्पादन के स्तर तथा पशु विकास में एक समृद्धि को ग्रहण कर एक आदर्श स्थापित कर सकते है।

पृष्ठ सं० 09--का शेष

अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए। अण्डा परजीवी ट्राइकोग्रामा 50,000 की फो फल लगते समय साप्ताहिक अन्तराल पर खेत में छोड़ने से फल छेदक कीट के प्रकोप को नियंत्रित किया जाता है।

3. हरा फुदका :– यह कीट हरे रंग के होते हैं। यह भिण्डी की फसल का भयनक शत्रु है। इस कीट की पीठ पर छोटा सा धब्बा होता है। यह कीट पौधों की पत्तियों से रस चूस लेते हैं, जिसके फलस्वरूप पत्तियां मुड़ जाती हैं और बाद में सूखकर गिर जाती हैं।

नियंत्रण :– इसकी रोकथाम के लिए नीमगिरी 4 प्रतिशत एवं 0.5 मिली0 इन्डोट्रान (चिपकने वाला पदार्थ) प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें अथवा मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. का 2 ली0 प्रति हेक्टेयर की दर से 600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर 10 दिनों के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

4. उकठा रोग :– यह रोग यूजेरियम नामक फफूंदी के कारण होता है। जो फसल जून–जुलाई में बोई जाती है, उन पर इस रोग का प्रभाव अधिक होता है। इस रोग में पत्त्यिां मुरझा जाती हैं तथा पौधे सूख जाते हैं।

नियंत्रण :– रोगरोधी प्रजाति जैसे पंजाब नं 123 व पूसा सावनी आदि ही बोयें। फसल चक्र अपनाकर भी रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

अदरक की खेती

डा० टी. डी. मिश्रा
विषय वस्तु विशेषज्ञ
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

प्रो० (डा०) नाहर सिंह
निदेशक प्रसार
प्रसार निदेशालय
शियाट्स, इलाहाबाद

भारत के मसालों में अदरक का प्रमुख स्थान है। यह विदेशी मुद्रा प्राप्ति का एक प्रमुख स्त्रोत है। विश्व उत्पादन का लगभग आधा अदरक भारत में ही उत्पादित किया जाता है। भारत में अदरक की खेती हिमांचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, केरल, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा आसाम में की जाती है ।

अदरक का उपयोग बहुत प्रकार के सब्जियों, मसाला इत्यादि रूप से प्रयोग होता है। परन्तु प्रमुख उपयोग सुखाकर सोंठ तैयार करना है। यह विदेशों में निर्यात का एक बहुत अच्छा साधन है। सोंठ का उपयोग घरेलू दवा के रूप में, औषधीय के रूप में, प्रसव पीड़ा कम करने तथा दूध बढ़ाने के लिए भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त अदरक का उपयोग कैंडी, जैली, टापनी तथा जिंजर बिस्कुट बनाने में किया जाता है। उदरशूल, ठंड एवं अमाशय के वायु रोगों में इसका मसालेदार शराब तथा बियर बहुत ही गुणकारी सिद्ध होती है। इसका उपयोग विभिन्न औषधियां जैसे जिंजर, टिंचर, गानगोला, जिंजरीन, डाइजेस्टिव टेवलेट के निर्माण में भी किया जाता है। अतः अदरक की खेती आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

भूमि का चुनाव एवं भूमि की तैयारी : रेतीली दोमट तथा दोमट कारबोनिक पदार्थयुक्त भूमि जिसमें जल निकासी का समुचित प्रबन्ध हो इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। अदरक की खेती उस भूमि पर नहीं करनी चाहिए, जिसमें पानी भर जाता हो। क्योंकि पानी भरा रहने के कारण कंदों में सड़न की बीमारी लग जाती है। मार्च के मध्य में चार–पांच जुताई हल से करके भूमि को अच्छी भुरभुरी बना लिया जाता है तथा अच्छी तरह से भूमि के खरपतवार निकालकर पुनः एक जुताई करके पाटा लगा कर खेत को समतल कर लेते हैं।

अदरक प्रसारण विधि : इसका प्रसारण मुख्यत वानस्पतिक विधि द्वारा किया जाता है क्योंकि साधारणतया इस पर फूल नहीं आते हैं। इसके प्रसारण के लिए भूमिगत तने, जिसे वानस्पतिक भाषा में राइजोम कहते हैं, का उपयोग किया जाता है। इन कंदों का रोग रहित टुकड़ा जिसका आकार 3 से 5 सेमी लम्बा तथा कम से कम 2, 3 स्वस्थ कलियां ही प्रसारण के लिए उपयुक्त रहती है।

प्रजातियां : अदरक की बहुत सी प्रजातियां हैं। जिसमें से प्रमुख प्रजातियों में सुरुचि, सुरभि, सुप्रभा, रियोडो जनरो, चायना, मैरान, थ्यूडेन गन्डयू तथा लोकर जातियां का परीक्षण पर्वतीय क्षेत्रों में किया जा चुका है। पैदावार की दृष्टि से सुप्रभा, मैरान, थ्यूडेन गन्डयू तथा कम रेशे वाली प्रजाति रियोडो जनरो उपयुक्त पाई गयी है।

बीज की मात्रा : अदरक बोने के लिए इसके कंदों का उपयोग किया जाता है। कंदों की मात्रा लगाने वाले कंद के आकार एवं वजन पर निर्भर करती है। अगर बड़े आकार के कन्द लगाये जाते हैं, तो अधिक कन्दों की आवश्यकता पड़ती है। बड़े कन्द लगाने से प्रति हेक्टर पैदावार तो बढ़ जाती है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से हानि होती है। इसके लिए मध्य आकार के तीन से पांच सेमी लम्बे तथा कम से कम 2, 3 स्वस्थ कलियों वाले कंद लगाने चाहिए। इस प्रकार लगभग 15 से 20 कु0/हे0 कंदों की आवश्यकता पड़ती है।

लगाने का समय एवं विधि : अन्य परिस्थितियां चाहे जितनी भी अनुकूल क्यों न हों, अगर कंद उचित समय

पर नहीं लगाये तो पैदावार तथा गुणों में बहुत कमी आ जाती है। इसलिए अधिक पैदावार लेने के लिए आवश्यक है कि कंदों को सही समय पर लगाया जाये। पर्वतीय क्षेत्रों के लिए मार्च के मध्य से लेकर अप्रैल के अन्तिम सप्ताह तक का समय कंद लगाने के लिए अच्छा माना जाता है। जबकि मैदानी क्षेत्रों के लिए अप्रैल मध्य से लेकर मई तक का समय उपयुक्त माना जाता है।

कंदों को समतल क्यारियों या 3–5 सेमी ऊँची मेड़ों पर लगाया जाता है। किन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में पानी के अभाव के कारण समतल क्यारियां ही अच्छी रहती हैं। कन्द लगाने से पहले खेत की सिंचाई करके मिट्टी को भुरभुरी बनाकर छोटी–छोटी क्यारियों में बांट कर 40 सेमी दूरी पर 7–10 सेमी गहरी नालियां बना ली जाती हैं। इन नालियों में नीचे उर्वरक तथा अच्छी सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालकर 20 सेमी के अंतर पर तथा 3 से 5 सेमी की गहराई पर कंदों को लगाकर ऊपर से मिट्टी से ढक देते हैं लगाने से पूर्व कंदों को रिडोमिल (मेटालाक्सिल. मैकोंजेब मिश्रण) 05 प्रतिशत घोल में 15 से 20 मिनट तक भिगो लेना चाहिए।

अवरोध पर्त : कंद लगाने के पष्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि भूमि के ऊपर पलवार या अवरोध पर्त लगाई जाये। इसके लिए लगभग 50 से 70 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट तथा 5 से 8 क्विंटल प्रति हे0 सूखी पत्तियां, सूखी घास या पौधों की पत्तियों को भूमि पर ऊपर से बिछा देना चाहिए। भूमि में नमी की मात्रा सुरक्षित रहती है जिसके कारण जमाव भी अच्छा होता है तथा फसल को पानी की कम आवश्यकता पड़ती है।

खाद तथा उर्वरक : अदरक की खेती में खाद व उर्वरक का प्रमुख स्थान है। भूमि की उपजाऊ शक्ति के अनुसार लगभग 300 से 400 क्विंटल प्रति हे0 अच्छी सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट की आवश्यकता पड़ती है, इनमें से आधी मात्रा भूमि तैयार करते समय तथा शेष मात्रा कंद लगाते समय अवरोध पर्त के रूप में डाल देनी चाहिए।

अधिक पैदावार लेने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग करना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए 75 किग्रा नाइट्रोजन, 75 किग्रा फास्फोरस तथा 150 किग्रा पोटाश को प्रति हे0 आवश्यकता पड़ती है, इसमें फास्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा तथा नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा कंद लगाने से पहले नालियों में डालकर मिट्टी से ढक देना चाहिए। शेष नाइट्रोजन में से आधी मात्रा जमाव शुरू होने के 30 दिन बाद तथा शेष बची हुई मात्रा 60 दिन बाद पौधों के पास डालकर भूमि की गुड़ाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई : अदरक वर्षा ऋतु में पैदा की जाने वाली फसल है। इसलिए अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती

है। अगर जमाव हो जाने पर वर्षा नहीं होती है तो एक या दो सिंचाई कर देनी चाहिए और बीच में वर्षा बंद हो जाने पर 8–10 दिन के अंतर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सिंचाई समय से न करने से इसकी पत्तियां झुलस जाती हैं और फसल पूर्णतया नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार इसके लिए 5–6 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान अत्यन्त आवश्यक है कि क्यारियों में पानी अधिक न भरे, क्योंकि पानी ज्यादा दिन भरा रहने से कंद में सड़न की बीमारी लग जाती है और फसल नष्ट हो जाती है।

निकाई–गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ाना : अदरक की फसल में बरसात में खरपतवार अधिक उगते हैं। इसलिए समय–समय पर इन खरपतवारों को निकालते रहना चाहिए। इसके लिए खुरपी आदि की सहायता से निकाई–गुड़ाई करके इनको निकाल देने से फसल स्वस्थ रहती है। इसके लिए 4–5 निकाई–गुड़ाई को आवश्यकता पड़ती है। गुड़ाई करते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि कंदों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे।

जब पौधों में कंदों का विकास आरम्भ हो जाये तो एक बार पौधों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। यह कार्य कंद लगाने के लगभग 2 माह बाद करना चाहिए। इस प्रकार चौथे तथा पांचवें माह में भी मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। अगर इसके कंद भूमि से बाहर निकले दिखाई दें, तो उसे समय–समय पर मिट्टी से ढंकते रहना चाहिए नहीं तो ये कंद खराब हो जाते हैं ।

बीज वाले कंदों का निकलना : जब पौधा भली प्रकार से स्थापित हो जाये तथा उसमें जड़ आ जाये, तब लगाये हुए कंदों को आसानी से निकाला जा सकता है। यह कार्य कंद लगाने के लगभग 60–80 दिन के बाद करना चाहिए। इसके लिए कुदाल या खुरपों से पौधों के

पास की मिट्टी को खोदकर बीज वाले कंदों को मूल पौधे से अलग कर लिया जाता है।

खुदाई : अदरक की फसल बुवाई के लगभग 7–8 माह बाद खुदाई के योग्य हो जाती है। इस प्रकार नवम्बर के शुरू से लेकर मध्य दिसम्बर तक पौधे सूखकर गिरने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि फसल खुदाई के लिए तैयार है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इसकी खुदाई पाला पड़ने के पूर्व अवश्य समाप्त हो जाये अन्यथा कन्दों में सड़न की बीमारी शुरु हो जाती है।

उपज : अदरक की प्रत्येक किस्म की उत्पादन क्षमता अलग–अलग होती है। औसतन प्रति हेक्टर 200 से 300 क्विंटल तक कंद प्राप्त हो जाते हैं। अगर अधिक पैदावार देने वाली प्रजातियां जैसे सुप्रभा, मेराना तथा थ्यूडेन गन्डयू का चयन करें, तो पैदावार में अधिक वृद्धि की जा सकती है।

बीमारियाँ :–

कंद सड़ने वाली बीमारी : अदरक में लगने वाली बीमारियों में से यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका प्रकोप एक प्रकार की फफूंदी द्वारा होता है। इस बीमारी का प्रकोप उन स्थानों में अधिक होता है जहां पर वर्षा अधिक तथा जल निकास की उचित व्यवस्था नहीं होती है। इस बीमारी से 20 से 40 प्रतिशत तक फसल को हानि होती है। इसका प्रकोप पहले पत्तियों के तनों के आधार से शुरू होता है। फिर पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती है। इस समय यदि तनों को खींचा जाये तो वह कंदों से अलग हो जाती है। कंदों से जुड़ा हुआ भाग मुलायम एवं नम होता है। अगर समय से इसकी रोकथाम नहीं की जाती है, तो बाद में कंद सड़ने शुरू हो जाते हैं।

रोकथाम : इस बीमारी के बचाव हेतु निम्न बातों को ध्यान रखना चाहिए –

- भूमि का चुनाव करते समय यह ध्यान रहे कि भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था हो।
- जिस भूमि पर पहले वर्ष इसकी खेती की गई हो उस पर दूसरे वर्ष खेती न की जाये।
- स्वस्थ एवं रोग रहित कंदों का चयन करें।
- रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- कन्दों को बोने से पूर्व रिडोमिल फफूंद नाशक के 0.1 प्रतिशत घोल से उपचारित कर बोना चाहिए।
- डाइथेन जेड 78 या 0.3 प्रतिशत का घोल बनाकर पौधों को जड़ों में तथा आस–पास की मिट्टी को अच्छी तरह से भिगों देना चाहिए।

पत्तियों पर धब्बा लगने वाली बीमारी : यह बीमारी/प्रकोप फफूंदी के द्वारा होती है। बीमारी में पत्तियों पर पीले–पीले धब्बे पड़ जाते हैं, जो कि बाद में भूरे रंग में बदल जाते हैं।

रोकथाम : इस बीमारी के लक्षण जैसे ही फसल पर दिखाई दे, उसी समय किसी तांब्रयुक्त फफूंदी नाशक दवा ब्लाइटौक्स या कापर आक्सीक्लोराइड 0.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

फ्यूजेरियम विल्ट : यह बीमारी फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम प्रजाति जोंजोवेरी नामक फफूंदी से उत्पन्न होती है। इसके लक्षण प्रथम नीचे वाली पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पहले नीचे वाली पत्तियां पीली पड़नी शुरू होती है तथा बाद में पूरा पौधा पीला पड़कर सूखने लगता है। कंदों का रंग दूधिया हो जाता है और ऊपर का छिलका सड़ने लगता है तथा अन्दर से काटने पर रंग मटमैला दिखाई देता है। कंदों का आकार भी बिगड़ जाता है एवं कंद सिकुड़ने शुरू हो जाते हैं।

रोकथाम : इस बीमारी के बचाव हेतु निम्न बात का ध्यान रखना चाहिए।

1. अगर पहले वर्ष की फसल में यह बीमारी लगी हो तो उसके कंद बीज के लिए न उपयोग करें।
2. जिस भूमि पर अदरक की खेती की गई हो उस पर दूसरे वर्ष फिर न की जाये।
3. कंदों को बोने से पहले मरक्यूरिक क्लोराइड के घोल में 10 मिनट तक भिगोकर बोना चाहिए या 2 ग्राम सरेसन को 1 किलो कंदों में मिलाकर बोया जाये या बैवस्टीन 0.1 प्रतिशत घोल से उपचारित कर कंदों को बोयें।

हमारे परमेश्वर और पिता के निकट शुद्ध और निर्मल भक्ति यह है, कि
अनाथों और विधवाओं के क्लेश में उनकी सुधि लें, और
अपने आपको संसार से निष्कलंक रखें।।

याकूब 1 : 27

जरबेरा की प्लास्टिक घरों में उन्नत खेती

नियति जैन
पी. एच. डी. छात्रा
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 देवी सिंह
सहायक अध्यापक
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

जरबेरा को ट्रान्सवाल डैजी या अफ्रीकन डैजी भी कहते हैं। यह एक प्रमुख फूल है, जो पूरे विश्व में उगाया जाता है। इसे क्यारियों, गमलों तथा चट्टानी उद्यानों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। लम्बे समय तक फूलदानों में ताजा बने रहने व अलग–अलग मनमोहक रंगों में उपलब्ध होने के कारण भी यह बहुत ही लोकप्रिय फूल है। इसका जन्म स्थान दक्षिण अफ्रीका माना जाता है। इसे ठन्डे स्थानों में आसानी से उगाया जा सकता है। जरबेरा एस्टेरेसी कुल का सदस्य है। इसके पौधे तना रहित, शाकीय, कोमल व बहुवर्षीय होते हैं। इसमें मुख्य रूप से पीला, नारंगी, हल्का पीला, सफेद गुलाबी के साथ–साथ और भी बहुत से रंग के फूल पाये जाते हैं। यदि फूल आकार में बड़े तथा उनके बीच वाला भाग काले रंग का हो, तो वह बाजार में अधिक पसन्द किया जाता है। जरबेरा के फूल को यदि काट कर फूलदान में लगाया जाये, तो लगभग 10–15 दिन तक इसका फूल अच्छी तरह रह सकता है।

जरबेरा के पौधों को प्लास्टिक घरों में क्यों उगाने की आवश्यकता होती है?

जरबेरा को सामान्यतः घर पर सजावट के लिये क्यारियों में ही उगाया जाता है। यदि इसके पौधों को हल्की छाया प्रदान की जाये, तो अच्छे फूल मिलते हैं। इसके लिये 50 प्रतिशत की छाया करने वाली प्लास्टिक की जाली का प्रयोग किया जा सकता है। आजकल कटे फूल के लिये प्रयोग की जाने वाली संकर किस्में तथा कुछ बाहर से आयी किस्मों को अधिक सावधानी पूर्वक उगाने की आवश्यकता है। यदि इन किस्मों को खुले वातावरण में उगाया जाये, तो उनसे उत्तम गुणवत्ता के तथा बड़े आकार के फूल प्राप्त नहीं होंगे। यदि 50 प्रतिशत की छाया करने वाली प्लास्टिक की जाली में भी इन्हें उगाया जाये, तो उसमें भी तापमान व नमी के ऊपर नियन्त्रण न होने के कारण तथा कीटों के प्रकोप को न रोक पाने के कारण बहुत अच्छे गुणवत्ता के फूल पैदा नहीं किये जा सकते हैं।

उपरोक्त सभी कारणों को ध्यान में रखते हुये जरबेरा के फूलों को प्लास्टिक घरों में उगाना उचित रहता है। प्लास्टिक हाउस में जरबेरा उगाने के प्रमुख लाभ निम्न प्रकार हैं।

1. पौधों की जैविक क्षमता का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।
2. उत्तम गुणवत्ता के फूल पूरे वर्ष पैदा किये जा सकते हैं।
3. विभिन्न कीट एवं रोगों से पौधों को आसानी से बचाया जा सकता है। यदि किसी कीट अथवा रोग का प्रभाव दिखाई भी देता है, तो उसे तुरन्त ही आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।
4. विपरीत मौसम जैसे ऑधी, ओला वृष्टि एवं अन्य प्राकृतिक आपदा से पौधों को कोई क्षति नहीं होती है।

किस्में :– जरबेरा में तीन प्रकार की किस्में पायी जाती हैं :–

1. **सिंगल प्रकार की किस्में** :– इसमें बाहर की ओर पंखुड़ियों की केवल एक कतार होती है। फूल भी आकार में छोटे होते हैं। इन किस्मों का प्रयोग केवल क्यारियों में लगाकर गृह वाटिका की सुन्दरता बढ़ाने के लिये किया जाता है। प्रमुख किस्में हैं: रूबी रेड, रूबियन रिंगो, टोंगा पिंक स्पार्क लेट आदि।

2. **सेमी डबल किस्में** :– इन किस्मों को गृह वाटिका में क्यारियों की सुन्दरता बढ़ाने के साथ–साथ कटे फूल के रूप में स्थानीय बाजार में बिक्री हेतु प्रयोग किया जाता है। इसमें रंगीन पंखुड़ियों की दो कतारें पायी जाती हैं। रंग भी सुन्दर होते हैं। इस वर्ग की प्रमुख किस्में है: रोजा बेला, डायवलों, संगरिया, टेस्टा रोजा, पाइटन, थलासा आदि।

3. **डबल किस्में** :– इन किस्मों को मुख्य रूप से कटे फूलों के रूप में ही अधिक प्रयोग किया जाता है। इन किस्मों में दो से अधिक रंगीन पंखुड़ियों की कतारें पायी जाती हैं। रंग भी अधिक सुहावने होते हैं। इस वर्ग में प्रमुख किस्में हैं: गोल्ड स्पाट, इबिजा, फ्रेड किंग, नेडजा, टर्राक्वीन, डस्टी लाबेलगा, कबाडा, लॉइजर, जायस, सुजान, अडामेन्ड, लालाजू, गेल्डर एपिल ब्लौसम, अम्बर कोमिल्डा, बिरादर टोरनाडो आदि।

उपरोक्त किस्मों के अतिरिक्त और बहुत से हाइब्रिड (संकर) किस्में भी हैं, जिनकी पुष्प उत्पादन क्षमता एवं सुन्दर रंग के फूलों के आधार पर बाजार में मांग अधिक है।

प्रवर्धन :– जरबेरा का प्रवर्धन दोनों ही प्रकार, बीज एवं वानस्पतिक विधि द्वारा किया जा सकता है।

1. सकर्स द्वारा प्रवर्धन :– जरबेरा का प्रवर्धन मुख्य रूप से इसी विधि द्वारा किया जाता है। जून के महीने में पूरे पौधे को उखाड़ कर उसमें से सभी सकर्स को हाथ से अलग कर लिया जाता है। औसतन एक पौधे से एक वर्ष में 6 सकर प्राप्त होते हैं। रोपाई से पहले सकर की पत्तियॉं एवं जड़ों की छँटाई कर दी जाती है।

2. माइक्रो प्रवर्धन अथवा टिशू कल्चर द्वारा प्रर्वधन :– शीघ्र तथा अधिक संख्या में, एक समान पौधे प्राप्त करने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें तने का ऊपरी भाग, फूल का सिर, पुष्प कलिका, पत्तियों की बीच वाली नसें प्रयोग की जाती हैं।

मृदा एवं जलवायु :– अच्छे जल–निकास वाली, हल्की एवं कार्बनिक तत्वों से युक्त भूमि जरबेरा उगाने के लिये उत्तम होती है। सामान्य अथवा हल्की क्षारीय पी0एच0 मान वाली भूमि भी इसके उत्पादन के लिये अच्छी मानी जाती है। भूमि में लगभग 50 सेंमी नीचे तक किसी प्रकार की कोई सख्त परत नहीं होनी चाहिये। इससें जल–निकास में बाधा उत्पन्न होती है।

ठन्डी तथा हल्की ठन्डी जलवायु में जरबेरा को खुले क्षेत्र में उगाया जा सकता है। परन्तु अत्यधिक ठन्डे एवं गर्म जलवायु में जरबेरा को केवल प्लास्टिक घरों अथवा कॉच के घरों में ही उगाया जाता है, क्योंकि अधिक ठण्डे स्थानों में पाले से नुकसान होने का भय रहता है तथा ज्यादा गर्म स्थानों में भी अधिक तेज धूप एवं गर्म हवाओं से पौधों को हानि होती है। दिन का तापमान 200–250 सेन्टीग्रेड तथा रात का तापमान 100–150 सेन्टीग्रेड उत्तम रहता है।

भूमि की तैयारी :– भूमि को 3–4 बार गहरी जुताई कर भुरभुरी बना लिया जाता है। इसके पश्चात जमीन से लगभग 30 सेन्टीमीटर ऊँची क्यारियॉं बना ली जाती हैं। क्यारियों की चौड़ाई 1 से 1.25 मीटर रखी जाती है। दो क्यारियों के मध्य में लगभग 30 सेन्टीमीटर चौड़ी मेड़ बना दी जाती है। भूमि की अन्तिम जुताई के समय ही अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद, रेत तथा बुरादा अथवा धान का भूसा 2:1:1 के अनुपात में जमीन में मिला दिया जाता है। इसी समय जमीन में कीटनाशी भी मिला देना उत्तम रहता है। जमीन में उसी स्थिति में रेत मिलायें जब जमीन भारी हो।

भूमि को उपचारित करना :– जरबेरा की व्यावसायिक खेती प्रारम्भ करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उगाये जाने वाले स्थान को सभी रोग एवं कीटों से मुक्त कर लें। इसमें मुख्य रूप से बीमारी फैलाने वाले घटक फाइटोथ्योरा, फ्यूजेरियम तथा पीथियम जैसे कवक फसल को काफी क्षति पहुँचाते हैं। क्यारियों को 2 प्रतिशत फारमेल्डीहाइड के घोल (200 मिलीलीटर फारमेल्डीहाइड/फोरमेलीन का 10 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र) से अच्छी तरह भिगो कर पालीथीन सीट से 72 घन्टे के लिये ढंक दिया जाता है।

भिगोने के स्थान पर दवा छिड़क कर भी पाली हाउस को बन्द कर दिया जाता है। 72 घन्टे बाद प्लास्टिक सीट को हटा दिया जाता है तथा पाली हाउस को खोल कर कुछ समय के लिये छोड़ देते हैं।

खाद तथा उर्वरक :– जरबेरा के पौधों को अधिक कार्बनिक पदार्थ की आवश्यकता होती है। इसे पूरा करने के लिये क्यारियों में रोपाई से पूर्व 7.5 किलोग्राम अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति वर्ग मीटर क्षेत्रफल की दर से मिला देनी चाहिये। यदि भूमि हल्की तथा रेतीली हो, तो यह मात्रा 10 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर तक बढ़ा देनी चाहिए। गोबर की खाद के स्थान पर पत्ती की सड़ी खाद भी प्रयोग कर सकते हैं।

रासायनिक खादों में नाइट्रोजन 10 ग्राम, फास्फेट 15 ग्राम तथा पोटाश 20 ग्राम प्रतिवर्ग मीटर की दर से प्रतिमाह देना उत्तम रहता है। रोपाई के बाद पहले तीन माह तक उपरोक्त मात्रा को दो भागों में बॉट कर 15–15 दिन के अन्तराल पर देना चाहिए।

पौधों की रोपाई की समय :– जरबेरा के पौधों की रोपाई सामान्य रूप से वर्ष में दो बार की जाती है।

1. बसन्त ऋतु (जनवरी सें मार्च) :– यदि पौधों की रोपाई जाड़े के शुरू में या जाड़े में करते हैं, तो पौधों की वृद्धि के लिये उचित तापमान रखने में काफी कठिनाई होती है। यदि तापमान कम रहता है, तो पौधों की मृत्यु अधिक होती है। यदि तापमान को उचित बनाये रखा जाये तो उस पर खर्च अधिक आता हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये जरबेरा की रोपाई बसन्त ऋतु में करना ही उत्तम रहता है। एक वर्ष तक फसल लेने के लिये रोपाई का यह समय सबसे अच्छा रहता है।

2. गर्मी में रोपाई (जून से अगस्त) :– यदि फसल एक या दो वर्ष के लिये लगायी जा रही है, तो गर्मी में रोपाई करना अच्छा रहता है। अगस्त के बाद फसल की रोपाई ठीक नहीं रहती है, क्योंकि अधिक ठन्ड शुरू होने पर पौधों की उचित वृद्धि नहीं हो पाती है। यदि दो वर्ष के लिये फसल उगायी जा रही है, तो उसमें द्वितीय वर्ष के ठन्ड के मौसम में अच्छे फूल प्राप्त नहीं होते हैं।

रोपाई की दूरी :– पौधों की रोपाई करते समय पूर्व में तैयार की गयी क्यारियों में लाइन से लाइन की दूरी 30–40 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधें की दूरी 25–30 सेन्टीमीटर रखते हुये रोपाई की जाती है। एक वर्ग मीटर में 6–7 पौधों की रोपाई करना उत्तम रहता है। रोपाई की दूरी उगायी जाने वाली किस्म, रोपाई का समय एवं भूमि के प्रकार पर भी निर्भर करती है।

पौधों की रोपाई :– जरबेरा की रोपाई के लिए क्यारियों को भूमि की सतह से 30 सेन्टीमीटर ऊपर रखने से भूमि का जल–निकास अच्छा होता है, साथ ही पौधों की जड़ों में हवा का संचार भी अच्छा होता है। रोपाई के समय यह विशेष ध्यान देने की बात है कि पौधों को अधिक गहराई पर नहीं रोपना चाहिये।

सिंचाई एवं निकाई गुड़ाई :– पहली हल्की सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद करनी चाहिये। इसके बाद यदि प्लास्टिक घर में टपक विधि से (ड्रिप) सिंचाई की जाये, तो अच्छा रहता है। क्योंकि पूरी क्यारी में पानी भर कर सिंचाई करने से पौधों को आवश्यकता से अधिक पानी मिल जाता है, जिससे पानी के अपव्यय के साथ–साथ बहुत सी बीमारियों का भी भय रहता है। इसलिये प्लास्टिक हाउस में जमीन के अन्दर ही छिद्रदार पाइप लगा कर टपक विधि से सिंचाई की जाती है। इस विधि से सिंचाई करने से 500–700 मिलीलीटर पानी प्रति पौधा प्रतिदिन प्राप्त होता है, जो कि लगभग 4.5 से 6 लीटर पानी प्रति वर्ग मीटर क्षेत्रफल के बराबर होता है। पानी की मात्रा मौसम, भूमि के प्रकार एवं पौधों की संख्या पर भी निर्भर करती है।

टपक विधि से सिंचाई करने पर ज्यादा निकाई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यदि ऊपर की जमीन कुछ सख्त दिखाई दे, तो 10–15 दिनों के अन्तराल पर खुरपी द्वारा हल्की गुड़ाई कर देनी चाहिये।

कीट तथा रोग :– जरबेरा में मुख्य रूप से सफेद मक्खी, माहू, माइट, थ्रिप्स तथा पत्ती काटने वाले कीटों का प्रकोप होता है। पत्ती काटने वाले कीट एवं सफेद मक्खी के नियन्त्रण हेतु 2 ग्राम मैलाथियान एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। जब भी इन कीटों का प्रकोप दिखायी दे तो तुरन्त छिड़काव कर देना चाहिए।

- थ्रिप्स एवं एफिड के नियन्त्रण हेतु 2 मिलीलीटर मेटासिस्टाक्स प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करते है।

- माइट के नियन्त्रण के लिए केल्थेन अथवा सल्फर 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

बीमारियों में मुख्य रूप से फूटरॉट, रूट रॉट, फ्यूजेरियम विल्ट तथा ब्लाइट का प्रकोप होता है। इनका नियन्त्रण निम्न प्रकार है :–

- मुख्य रूप से माइट के लिये छिड़की जाने वाली दवा केल्थेन अथवा सल्फर से माइट के साथ–साथ पाउडरी मिल्ड्यू नामक रोग का भी नियन्त्रण हो जाता है। इसके लिये अलग से छिड़काव करने की आवश्यकता नहीं होती है।
- मृदा से होने वाली सभी बीमारियों के नियन्त्रण के लिए बेविस्टीन अथवा केप्टान में से किसी एक रसायन की 2 ग्राम मात्रा एक लीटर पानी में घोलकर यदि क्यारियों में मिट्टी को उपचारित कर दिया जाये, तो सभी फफूँद जनित रोगों का नियन्त्रण किया जा सकता है।
- सभी झुलसा रोगों के नियंत्रण हेतु जरबेरा के पौधों पर डाइथेन एम–45 अथवा बेवीस्टीन (2 ग्राम रसायन प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

उपरोक्त के अलावा भी यदि किसी अन्य रोग के लक्षण दिखायी दें, तो तुरन्त उनकी जॉच कराकर आवश्यक उपचार करना चाहिये।

पौधों पर पुष्पन :– जरबेरा के पौधों में रोपाई के लगभग 3 माह बाद फूल आने लगते हैं। झरबेरा के पौधों की एक बार रोपाई करने के पश्चात् 2–3 वर्ष तक फूलों का अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके पश्चात् फूलों की संख्या में कमी आने लगती है तथा फूलों की गुणवत्ता भी प्रभावित होने लगती है। इसलिए अच्छा यही रहता है कि प्रत्येक 2 या 3 वर्ष बाद जमीन को अच्छी तरह उपचारित कर पुनः रोपाई करनी चाहिए।

फूलों को तोड़ना एवं पैकिंग :– फूलों को तोड़ने का सबसे अच्छा समय प्रातः काल अथवा सायंकाल होता है। फूलों को तोड़ कर तुरन्त पानी से भरी बाल्टी में रख दिया जाता है। फूलों को तोड़ने की सही अवस्था वह होती है जब डिस्क पुष्पों की 2–3 लाइनें पूरी तरह विकसित हो जायें। फूलों की डन्डी को पकड़ कर एक तरफ झुकाने तथा हल्का सा झटका देने पर फूल पौधे से अलग हो जाता है। पुष्प डन्डी को नीचे से 2–3 सेन्टीमीटर काट कर फूलों को व्यावसायिक ब्लीज (ताजा तारकोलेक्डि पानी में) में रख दिया जाता है। फूलों को कुछ समय तक ठन्डे कमरे में रखा जाता है। इसके पश्चात् 10 या 12 फूलों के बन्डल बनाकर उन्हें पतली जिलेटिन कागज की सीट से ढंक दिया जाता है। यदि स्थानीय बाजार में ही बेचना है, तो इतना पैक करना काफी रहता है। यदि फूलों को बाहर भेजना हो तो उन्हें अच्छी तरह से गत्ते के डिब्बों में पैक किया जाता है, जिनका आकार 100 X 30 वर्ग सेन्टीमीटर होता है। एक डिब्बे में 50 फूल एक साथ पैक किये जाते हैं।

फूलों की उपज :– फूलों की संख्या पौधों की किस्म, समय, रखरखाव एवं उम्र पर निर्भर करती है। प्लास्टिक के घरों में एक वर्ग मीटर क्षेत्रफल से औसतन एक वर्ष में 200 फूल तक प्राप्त हो जाते हैं। अलग–अलग किस्मों में प्रतिमाह अलग–अलग पुष्प उत्पादन होता है।

किस्में	माह					
	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल
गोल्ड स्पाट	8	9	11	11	13	15
रोजा बेला	9	11	13	16	17	19
रेन्डेज वोउस	8	10	11	13	15	16
इबिजा	7	9	11	13	15	16
टोरनाडो	7	8	10	12	14	14

उपरोक्त पुष्पों की संख्या प्रति वर्ग मीटर प्रति माह, प्लास्टिक घरों से प्राप्त हुई है।

आम की उन्नत खेती

नियति जैन
पी. एच. डी. छात्रा
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

डॉ0 देवी सिंह
सहायक अध्यापक
उद्यान विभाग
शियाट्स, इलाहाबाद

आम एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल है। अच्छे स्वाद, सुगन्ध तथा आकर्षक रंगों वाले इस फल में विटामिन 'ए' एवं 'बी', प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। भारत में आम उगाने वाले क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश का स्थान प्रथम है। आम ऐसा फल है, जिसका उपयोग इसकी हर अवस्था में किया जाता है। कच्चे आम का प्रयोग चटनी, अचार तथा पीने वाले पेयों के रूप में किया जाता है। पके फलों को खाने के अतिरिक्त अनेक प्रकार के स्क्वैश, जैम, जैली, सीरप तथा नेक्टर बनाये जाते हैं।

जलवायु एव भूमि :– आम समशीतोष्ण तथा उष्ण दोनों ही प्रकार की जलवायु में लगाया जा सकता है। यह आर्द्र तथा गर्म जलवायु में अच्छा पनपता है। जून से सितम्बर तक वर्षा तथा शेष महीनों में खुले मौसम वाले सभी क्षेत्र आम के लिए अच्छे होते हैं। फलन के समय अर्थात् फरवरी से मार्च तक वायुमण्डल में बादल तथा नमी नहीं होना चाहिए। इससे रोग एवं कीटों का प्रसार बढ़ता है तथा आम की फसल को क्षति पहुँचती है।

आम का वृक्ष सहिष्णु होने के कारण अनेक प्रकार की भूमि में लगाया जा सकता है। परन्तु आम की सफल खेती के लिए दोमट, उचित जल निकास वाली गहरी भूमि उपयुक्त मानी जाती है। मिट्टी का पी.एच.मान 6.0–8.0 तथा अच्छी वृद्धि हेतु 2–2.5 मीटर गहरे, मृदा की आवश्यकता होती है।

किस्में :– हमारे देश में आम की लगभग एक हजार किस्में पायी जाती है। परन्तु व्यवसायिक दृष्टि से केवल 20 किस्मों को देश के विभिन्न क्षेत्रों में लगाया जाता है। आम की सफल बागवानी के लिए आवश्यक है कि उगाई जाने वाली किस्म अच्छे गुणों वाली और उस क्षेत्र की जलवायु में अच्छी तरह पनपने वाली हों। उत्तर भारत में व्यापारिक स्तर पर निम्न किस्में उगाई जाती हैं –

(अ) शीघ्र पकने वाली किस्में :– ये किस्में 20 मई से जून के अन्त तक पक कर तैयार हो जाती हैं।

1. गौरजीत :– यह पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख किस्म है। इसके फल 20 मई के बाद पकना शुरू हो जाते है और जून के प्रथम सप्ताह तक समाप्त हो जाते हैं। फल गोल, मध्यम आकार के, पकने पर सुनहरे पीले रंग के स्वाद में अधिक मीठे होते हैं।

2. बाम्बे ग्रीन :– इसे मालदा तथा सरौली भी कहते हैं। फल मध्यम आकार का, अण्डाकार तथा पकने पर हरे रंग का चित्तीदार होता है। यह स्वाद में अत्यन्त मीठा परन्तु इसकी भण्डारण क्षमता कम होती है।

3. रटौल :– इसका फल छोटे से मध्यम आकार का अण्डाकार, रंग हरा–पीला, सुगन्ध युक्त व मीठा होता है। इसकी खेती पश्चिमी जनपदों विशेषकर मेरठ, मुजफरनगर, सहारनपुर में की जाती है। इसके निर्यात की अच्छी सम्भावनायें हैं।

(ब) मध्य मौसम की किस्में :– यह किस्में जून के तृतीय सप्ताह तक पकना प्रारम्भ करती हैं।

1. दशहरी :– यह उत्तर भारत में उगने वाली सबसे लोकप्रिय किस्म है। फल मध्यम आकार या लम्बा आकार का, रंग हरा–पीला, मीठा, गूदा कड़ा तथा विशेष सुगन्धयुक्त होता है। रेशा रहित होने के कारण इसे टुकड़ों में काट कर खाया जाता है। इसकी भण्डारण क्षमता अधिक (लगभग 10 दिन) होती है।

2. लंगड़ा :– इसे पूर्वी उत्तर प्रदेश में कपुरी के नाम से भी जाना जाता है। फल मध्यम से बड़े आकार का,

पकने पर हरे रंग का, गूदा हल्का रेशेदार, सुवास युक्त व मीठे स्वाद वाला होता है। इसकी भण्डारण क्षमता मध्यम (लगभग 4 दिन) होती है।

3. लखनऊ सफेदा :– इसके फल 15 जून के बाद पकना शुरू होते हैं। फल मध्यम आकार के, पीले रंग के तथा अच्छी मिठास वाले होते हैं।

(स) देर से पकने वाली या पछेती किस्में :– यह किस्में जुलाई–अगस्त में पककर तैयार होती हैं।

1. चौसा :– इसके फल बड़े आकार के, चपटे, अंडाकार, रंग हरापन लिए हुए पीला, गूदा मीठा व सुगन्धयुक्त होता है। इसके फल मध्य जुलाई के आस–पास तैयार होते हैं। इसकी भण्डारण क्षमता मध्यम है। इसके निर्यात की अच्छी सम्भावनायें हैं।

(द) अचार वाली किस्में :– इस प्रकार की किस्मों के फल मोटे गूदे वाले, रेशेदार, खट्टे अधिक तथा देर से पकने वाले होते हैं। इनमें प्रमुख किस्में हैं – रामकेला, शुकुल, केतकी बिहार, बथुई, चैलेन्जर, महमूदुल समर इत्यादि हैं। रामकेला के व्यवसायिक रोपण की अच्छी संभावनायें हैं।

उत्तर भारत की इन प्रमुख किस्मों के अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, द्वारा आम की दो संकर किस्में विकसित की गई हैं–

1. आम्रपाली :– यह दशहरी एवं नीलम किस्मों के क्रास से विकसित एक बौनी संकर किस्म हैं। यह नियमित फलत और जुलाई के द्वितीय सप्ताह में तैयार होने वाली किस्म है। एक हेक्टेयर में 2.5ग2.5 मीटर की दूरी (पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली) पर 1600 पौधे, 3ग3 मीटर की दूरी (मध्य उत्तर प्रदेश) पर 1112 पौधे और 4ग4 मीटर की दूरी (पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं तराई क्षेत्र) पर 625 पौधे लगाये जा सकते हैं।

2. मल्लिका :– यह नीलम और दशहरी के क्रास से विकसित की गई हैं। यह नियमित रूप से फलने वाली मध्य मौसम की किस्म हैं इसका फल लम्बा, बड़ा, पकने पर कैडिमयन की तरह पीला एवं स्वादिष्ट होता है। इसकी भण्डारण क्षमता अधिक परन्तु फलत कम है। इसके फल निर्यात के लिए अच्छे प्रमाणित हो रहे हैं।

(य) निर्यात की किस्में :– निर्यात के लिए अल्फान्जो (हापुस) किस्म सबसे उपयुक्त पाई गई है। उसकी खेती रत्नागिरी (महाराष्ट्र) में व्यापारिक स्तर पर की जाती है। इसके फल का आकार तिरछा, अण्डाकार, मध्यम आकार और रंग पीला नारंगी होता है, इसकी भण्डारण क्षमता अधिक है। उत्तर प्रदेश की दशहरी, चौसा व लंगड़ा किस्मों के फलों का अरेबियन देशों में निर्यात की काफी सम्भावनायें हैं। गुजरात की केसर तथा आन्ध्र प्रदेश से बेगनपल्ली का निर्यात निरन्तर बढ़ रहा है।

निर्यात हेतु यूरोपियन पसन्द व स्वाद के अनुसार रंगीन, 250–300 ग्राम वजन वाली, रोग व कीट प्रतिरोधी तथा अधिक भण्डारण क्षमता वाली किस्मों के चयन की आवश्यकता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की तुलना में पश्चिमी भाग में किस्में 15 दिन बाद तैयार होती है।

प्रसारण :– आम के पौधे सामान्यतः गुठली या कायिक प्रवर्धन द्वारा तैयार किये जाते हैं। गुठली से उत्पन्न पौधों को मूलवृन्त के रूप में काम में लाया जाता है। बीजू पौधे तैयार करने के लिए आम की गुठलियों को जुलाई के महीने में बो दिया जाता है। सामान्तः आम की किस्मों को तैयार करने के लिए किसी भी बीजू मूलवृन्त को ले लिया जाता है परन्तु बहु भ्रुणीय मूलवृन्तों के प्रयोग से छोटे किस्म के पेड़ तथा जल्दी फल देने की प्रवृत्ति भी विकसित हो जाती है।

इस समय आम के वानस्पतिक प्रसारण की निम्न दो विधियाँ प्रचलित हैं–

1. वीनियर कलम :– यह आम के प्रवर्धन की एक उन्नतशील विधि है। इस विधि में भेंट के विपरीत मूलवृन्त को अपने स्थान पर ही रखा जाता है और करीब एक वर्ष के मूलवृन्त के पौधों में वीनियर कलम किया जाता है। इसमें मूलवन्त पर कलम लगाने से पूर्व सांकुर डाली को इच्छित किस्म की लगभग चार से छः माह पुरानी टहनियाँ जो लगभग 20 सेन्टीमीटर लम्बी, पेन्सिल के बराबर मोटी जिनकी शिखरीय कली फूली हुई परन्तु खुली न हो, प्रयोग में लाना चाहिए। इस प्रकार चुनी टहनियों के पत्ते कलम करने के लगभग 10 दिन पूर्व इस तरह से काटना चाहिए कि पत्तों के डंठल टहनी पर लगे रहें। कुछ दिनों पश्चात् जब डंठल गिर जायें और शिखर कली में उभार आ जाये। तब इन टहनियों को मूलवृन्त में नीचे से लगभग 20 सेन्टीमीटर ऊँचाई पर 30 से 40 मिलीमीटर लम्बा कट ऊपर से नीचे की ओर भीतरी सतह पर लगाकर कलम कर दिया जाता है। इसके बाद पालीथीन की पट्टी से कलम तथा

मूलवृन्त को इस प्रकार बांध देते हैं कि कटे हुए भाग में हवा या पानी न जा पाये और तुरन्त ही कलम किये हुए स्थान से ऊपर के भाग का लगभग आधा हिस्सा काट देना चाहिए। बाद में जब कलम पूर्ण रूप से सफल हो जाये, कलम के ऊपर के बचे हुये भाग को भी काट देना चाहिए। कलम बांधने का सर्वोत्तम समय जुलाई–अगस्त है।

2. साट वुड क्लेट ग्राटिंग :– आम में अब क्लेट ग्राटिंग बहुत सफल प्रवर्धन की विधि साबित हो रही है। इस विधि में मई से अक्टूबर तक मूलवृन्त पर सायन (संकुर शाखा) को क्लेट कर दिया जाता है। इस विधि ा में मूलवृन्त के टाप को पुनः काटना नहीं पड़ता है और पौधे सीधे तथा सुन्दर आकार धारण करते हैं। इस विधि ा द्वारा प्रवर्धन को व्यवसायिक बनाने की अच्छी सम्भावनायें हैं। स्वस्थीन बाग स्थापन में यह विधि सर्वोत्तम प्रमाणित होगी।

रोपण :– आम का रोपण पहले से कार्यक्रम निर्धारित करके करना चाहिए। मई–जून के महीने में किस्म के अनुसार 11 से 13 मीटर की दूरी पर एक घनमीटर आकार के गड्ढ़े खोदने चाहिए। इन्हें 15 दिन खुला छोड़ने के बाद (जिससे मिट्टी में जीवाणु व कीड़े आदि तेज धूप में समाप्त हो जायें) खाद एवं मिट्टी की समान मात्रा के मिश्रण से भरकर सिंचाई कर देना चाहिए, जिससे गड्ढे की मिट्टी बैठ जाये। पौधे लगाने का सर्वोत्तम समय जुलाई से सितम्बर है। जिस भूमि में पौध ो तेजी से बढ़ते हैं वहां पौधों को 13 X 12 मीटर या 12 X 12 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिए। शुष्क भूमि या उस क्षेत्र में जहां वृद्धि कम होती है 10 X 10 मीटर की दूरी पर पौधे लगाये जाते हैं। बंजर भूमि में स्वस्थीन बाग स्थापन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सघन बागवानी के लिए पौध से पौध की दूरी 5 X 2.5 मीटर रखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त सिंचाई की सुविध ाा उपलब्ध होने पर फरवरी–मार्च में भी रोपण कार्य किया जा सकता है।

आम के प्रमुख किस्मों में स्वअनिषेच्यता के कारण परागण की समस्या दूर करने के लिए 10 प्रतिशत दूसरे किस्म के पौधे लगाना चाहिए। दशहरी के बाग में बाम्बे ग्रीन, चौसा के साथ दशहरी एवं लंगड़ा के साथ बाम्बे ग्रीन के पौधे परागण के लिए उपयुक्त रहते हैं।

पोषण :– आम के पौधों में कितनी खाद डाली जाये यह भूमि की उर्वरता व पौधों की उम्र पर निर्भर करता है। आम के पौधों को कम्पोस्ट व पोषक तत्व आयु के अनुसार निम्नतालिका के अनुसार सामान्यतः देना चाहिए।

पेड़ की आयु (वर्षो में)	कम्पोस्ट (किग्रा.)	मात्रा प्रति पेड़ (ग्राम में) तत्व के रूप में					
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	कापर	जिंक	बोरेक्स
1	10	100	50	100	25	25	–
2	20	200	100	200	50	50	–
3	30	300	150	300	75	75	–
4	40	400	200	400	100	100	–
5	50	500	250	500	125	125	125
6	60	600	300	600	150	150	150
7	70	700	350	700	175	175	175
8	80	800	400	800	200	200	200
9	90	900	450	900	225	225	225
10	100	1000	500	1000	250	250	250

आम में पोषक तत्वों की मात्रा को उपरोक्तानुसार 10 वर्ष तक बढ़ाते रहना चाहिए। इसके बाद मात्रा निश्चित कर देनी चाहिए। उपरोक्त मात्रायें एक औसत उपजाऊ भूमि के लिए संस्तुत की गई है। मिट्टी की जांच के आधार पर अधिक अथवा कम उपजाऊ मिट्टियों के लिए यह मात्रायें कम अथवा अधिक की जा सकती हैं हल्की भूमि में प्रायः जिंक, बोरेक्स एवं कॉपर की कमी पाई जाती है। अतः इनका प्रयोग आवश्यक होता है।

आम के पौधों में उर्वरक की पूर्ण मात्रा दो बराबर भागों में बांटकर आधी मात्रा सितम्बर–अक्टूबर तथा शेष आधी मात्रा नवरोपित बागों अथवा ऐसे वृक्ष जो मातृ वृक्ष के रूप में प्रयोग किये जा रहे हैं, उनमें जनवरी माह में तथा फलत वाले वृक्षों/बागों में अप्रैल–मई में देना चाहिए। उर्वरक देकर तुरन्त हल्की गुड़ाई व सिंचाई करनी चाहिये। कम्पोस्ट खाद का प्रयोग जुलाई माह में करना चाहिए। खाद डालने के पूर्व पेड़ के थाले से खरपतवार निकाल दें। छोटे पौधों में तने के आसपास थोड़ी दूरी छोड़कर तथा बड़े पौधे के तने के आसपास 50 सेन्टीमीटर का घेरा छोड़कर उर्वरकों को पौधे की शाखाओं के फैलाव तक बुरक कर मिट्टी में मिला देना चाहिए।

कटाई–छंटाई :– पारम्परिक रूप से आम के पेड़ में कटाई व छंटाई की संस्तुति नहीं की जाती रही है। किन्तु आरम्भ में पौधे को एक निश्चित आकार देने के लिए छंटाई की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। मुख्य तने के 75 सेन्टीमीटर ऊँचाई तक शाखा नहीं निकलने देना चाहिए और मुख्य शाखाओं के बीच में अलग–अलग दिशाओं में 20 से 25 सेन्टीमीटर का अन्तर रखते हुए शाखायें निकलने देना चाहिए वरन् शाखाओं के आपस में उलझने व टूटने का डर होता है। ऐसी शाखायें जो आपस में एक दूसरे के आर–पार जा रही हैं, काट देना चाहिए। आम के वृक्ष की ऊँचाई कम रखने तथा प्रत्येक भाग को पूर्ण रूप से सूर्य का प्रकाश तथा वायु का संचरण बनाये रखने के लिए कटाई–छंटाई आवश्यक है।

अन्तः फसल :– आम का बाग तैयार होने में काफी समय लगता है अतः पेड़ों के बीच खाली स्थान में अन्तः फसल लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए वार्षिक फसल या अल्पावधि के फल वृक्षों को लगाना चाहिए। दलहनी फसलें (मटर, उर्द, मूंग तथा लोबिया आदि), मौसमी सब्जियाँ (भिन्डी, मटर फूलगोभी, मूली, टमाटर, प्याज, गाजर, पालक तथा शलजम आदि) तथा अन्तः पूरक वृक्षों के रूप में पपीता, अमरूद, आड़ू, फालसा, करौंदा, अलूचा, नींबू प्रजाति के तथा अनार के पेंड़ लगाये जा सकते हैं। पुराने बगीचों में जहाँ छाया के कारण धूप कम आती है, अन्नानास, अदरक व हल्दी लगाये जा सकते हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम ऐसी फसलें ले जो कि पोषक तत्वों के लिए आम के साथ प्रतियोगी न हो। अन्तः फसल के लिए आवश्यकतानुसार अलग से पोषक तत्वों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। आम में अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। अतः अधिक पानी चाहने वाली फसलों जैसे–धान, मक्का, गन्ना, बाजरा तथा गेंहूँ आदि को अन्तः फसलों के रूप में नहीं उगाना चाहिए।

निराई–गुड़ाई :– आम के बागों में निराई–गुड़ाई, खरपतवार को दूर करने के साथ–साथ इसलिये भी जरूरी है कि पानी के साथ जड़ों को उचित वायु भी मिले जिससे जड़ों व प्ररोहों का पूरा विकास हो सके। निराई व गुड़ाई से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है जिससे पानी की आवश्यकता भी अपेक्षाकृत कम हो जाती है। इसके साथ ही साथ इन कर्षण क्रियाओं से बागों में कीड़े–मकोड़ों की संख्या में भी कमी हो जाती है। यदि जुताई करने की आवश्यकता हो, तो वर्ष में कम से कम तीन जुताई, बरसात के पहले व बाद में और नवम्बर का आखिरी सप्ताह उचित होता हैं। जुताई गहरी नहीं करनी चाहिए।

सिंचाई :– आम को दिये जाने वाले पानी की मात्रा व पानी देने का अन्तर, मिट्टी के प्रकार, स्थान की जलवायु एवं पौधें की उम्र पर निर्भर करता है। साधारणतया छोटे पौधों को जाड़े में पंद्रह दिन तथा गर्मी में एक सप्ताह के अन्तर पर सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ती है। फलदार पौधों में मार्च से जून तक 12–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। तत्पश्चात् सितम्बर के मध्य से आधे नवम्बर तक एक सिंचाई करनी चाहिए। एक बार में अधिक पानी देने की अपेक्षा थोड़ा–थोड़ा पानी कई बार देना अधिक लाभदायक है। वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए ड्रिप सिंचाई की पद्धति अपनानी चाहिए। माइक्रो स्पिंकलर सिंचाई के सम्बन्ध में जानकारी उद्यान विभाग से प्राप्त कर सकते हैं।

ड्रिप सिंचाई पद्धति से उपज अधिक होती है, फल गुणवत्ता युक्त तथा निराई–गुड़ाई एवं कीट–व्याधि नियंत्रण पर होने वाले खर्च में भी कमी हो जाती है।

तुड़ाई एवं उपज :– आम के हरे एवं परिपक्व फल ही तोड़ने चाहिए। परिपक्वता परखने के लिए कुछ फलों को काटकर देख लें, यदि फल के गूदे का रंग हल्का पीला हो, तो ऐसे फल परिपक्व है और यदि गूदे का रंग सफेद हो, तो यह अपरिपक्व हैं और ऐसे फलों को तोड़ना नहीं चाहिए। यह भी ध्यान रखें कि फल जमीन पर न गिरें और न ही किसी प्रकार की चोंट या खरोंच आये। फलों को 5 से 8 मिलीमीटर लम्बी डंठल के साथ हाथ से अथवा हार्वेस्टर से तोड़ाई की जानी चाहिए, इससे फलों पर चेंप के कारण काले धब्बे नहीं पड़ते और भण्डारण के दौरान स्टेम एन्ड राट व अन्य फफूंदों का संक्रमण कम होता है। तुड़ाई के पश्चात् कुछ देर तक फलों को डंठल नीचें करके खड़ा रखने से चेंप निकल जाती है। फलों को सुबह अथवा सायंकाल तोड़कर छायादार स्थान में रखना चाहिए। तोड़े गये फलों का श्रेणीकरण (ग्रेडिंग) उनके आकार, वजन, रंग व परिपक्वता के आधार पर करना चाहिए इससे उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों को लाभ होता है। बड़े आकार के फल छोटे फलों की अपेक्षा देर से पकते हैं और इनकी भण्डारण क्षमता भी 2–4 दिन अधिक होती है।

साधारणतया कलमी पौधे 5 वर्ष में फल देना प्रारम्भ कर देते हैं। एक 6 वर्षीय वृक्ष से 50–70 फल प्राप्त हो सकते हैं। वृक्ष की उम्र बढ़ने के साथ फलों की संख्या भी बढ़ती जाती है। 10 वर्ष पुराने वृक्ष से 300–500 फल, 16 वर्षीय पुराने वृक्ष से 1000 से 1500 फल औसतन प्राप्त होते हैं।

पेटी बन्दी :– भण्डारण, परिवहन व विपणन के लिए पेटीबन्दी अति आवश्यक है। आजकल आम अधिकतर हवादार लकड़ी की पेटियों में पैक किये जाते हैं। लकड़ी की उपलब्धता घट रही है तथा पर्यावरण के दृष्टिकोण से भी लकड़ी की पेटी का प्रयोग कम हो रहा है। उक्त को कोरूगेटैड पेटियों में पैकिंग करना अधिक उपयोगी रहता है। इससे फलों का मूल्य भी अधिक प्राप्त होता है। पेटी के ऊपर सुन्दर छपाई की सुविधा होती है। फल को पेटी में रखने से पहले सूखी मुलायम घास, पेड़ के पत्ते, कागज की कतरन, पुराना समाचार पत्र, धान का पुआल आदि का स्तर के रूप में प्रयोग होता है। इसमें फल पेटी की रगड़ से बच जाते हैं। प्रत्येक फल को यदि 25 वर्ग सेन्टीमीटर के अखबार या टिशू पेपर के टुकड़ों जिनका उपचार डाईफिनाइल रसायन (30–40 मिलीलीटर/लीटर में) से किया जा चुका हो, में लपेटा जाय तो फल 4–5 दिन में अच्छी तरह पकते हैं और उनका रंग भी काफी चमकदार व आकर्षक होता है। इस क्रिया से फलों में सिकुड़ाव कम होता है और फफूंदी का संक्रमण भी नियंत्रित हो जाता है।

भण्डारण :– साधारणतः परिपक्व हरे आम को कमरे के तापमान पर किस्म अनुसार 4 से 10 दिन तक सुरक्षित भण्डारित किया जा सकता है। आम के फलों की भण्डारण अवधि विभिन्न तरीकों से बढ़ाई जा सकती है जैसे–पूर्वशीतलन, रासायनिक उपचार, शीत भण्डारण आदि।

1. पूर्व शीतलन :– तोड़ने के पश्चात् फलों को ठंडे पानी या हवा में जिसका तापमान 10–15 डिग्री सेन्टीग्रेट हो, आधे घण्टे तक रखा जाता है। इससे फल की ''फील्ड हीट'' कम हो जाती है और उनकी भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है।

2. शीत भण्डारण :– इस विधि में फलों को 10–13 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान तथा 85–90 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता पर 3–4 सप्ताह तक रखा जा सकता है।

आम के प्रमुख रोग एवं कीट तथा उनका प्रबन्धन :– आम का वृक्ष अपने जीवन काल में कई तरह के रोग एवं कीटों का शिकार होता है। इसके रोकथाम हेतु समय–समय पर आवश्यक कीट एवं रोग नियंत्रण उपाय करना जरूरी होता है।

(अ) बाग में होने वाले रोग :–

1. पाउडरी मिल्ड्यू (खर्रा, दहिया) :– यह रोग ओइडियम मैजीफेरी नामक कवक द्वारा होता है। इसका प्रकोप अधिकांशतः फरवरी–मार्च या कभी–कभी उसके पहले भी बढ़ते हुए तापक्रम तथा आर्द्रता के फलस्वरूप होता है। इसमें पुष्पवृन्त, पुष्प एवं छोटे अविकसित फल पीले पड़कर गिर जाते हैं। गर्म और नम मौसम तथा ठंडी रात में यह रोग अधिक फैलता है।

रोकथाम :– इस रोग से बचाव के लिए एक मौसम में कुल तीन छिड़काव की संस्तुति की जाती है।

प्रथम छिड़काव :– घुलनशील गंधक (वेटैबुल सल्फर) के 0.2 प्रतिशत (2 मिलीलीटर, दवा प्रति लीटर पानी में

घोलकर) घोल से पुष्प वृन्तों के निकलने पर परन्तु फूल खिलने से पहले।

द्वितीय छिड़काव :– ट्राइडेमार्फ (कैलिक्सीन) के 0.1 प्रतिशत एक मिलीलीटर दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) के घोल से पहले छिड़काव के 10–15 दिन बाद अथवा रोग दिखाई देने पर।

तृतीय छिड़काव :– डाइनोकैप (कैराथेन) के 0.1 प्रतिशत (एक मिलीलीटर दवा प्रति लीटर पानी में) अथवा ट्राइडीमेंफान (बेलेटान) के 0.05 प्रतिशत (500 मिलीग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) के घोल से दूसरे छिड़काव के 10–15 दिन बाद अर्थात् फल के सरसों के बराबर आकार ग्रहण करने पर। यह उपचार रोग लगने से पूर्व करना अधिक लाभकारी होता है। इन दवाओं के साथ ही भुनगा कीट के नियंत्रण हेतु कीटनाशक को भी मिलाकर(कम्पैटिबिल्टी चार्ट के आधार पर)छिड़क सकते है।

2. एन्थ्रैक्नोज (काला वर्ण) :– कवक जनित यह रोग नम मौसम में पौधे के पर्णीय भाग को प्रभावित करता है। इस रोग में पत्तियों पर अण्डाकार एवं असमान आकार के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तियों पर रोग का स्थान कभी–कभी फट जाता है। नई पत्तियाँ इस रोग से अधिक प्रभावित होती हैं।

रोकथाम :– किसी ताम्रयुक्त रसायन (कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 डब्ल्यू.पी.) का 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर अथवा कार्बेन्डाजिम (एक ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) फरवरी, अप्रैल, अगस्त तथा सितम्बर के महीने में छिड़काव करना चाहिए।

3. डाईबैक (उल्टा सूख रोग) :– बलुआर भूमि में इसका व्यापक संक्रमण होता है। इस रोग में शाखायें व टहनियाँ सूखने लगती है। यह रोग मुख्यतः वर्षा की समाप्ति के पश्चात् दिखाई देने लगता है परन्तु अक्टूबर के अंतिम सप्ताह या नवम्बर के प्रथम सप्ताह में पेड़ों पर अच्छी तरह दिखाई देता है। रोग ग्रस्त भाग पर कहीं–कहीं पीला गोंद सा पदार्थ भी दिखाई देता है।

रोकथाम :– इस रोग की रोकथाम के लिए निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए

1. हल्की बलुवार मिट्टी में आम के बाग नहीं लगाये जाने चाहिये।
2. स्वस्थ पेड़ों से कलम बांधने हेतु सांकुर डाली चुनना चाहिए।
3. कलम बांधने में प्रयोग किये जाने वाले चाकू को रोगाणुरहित कर लेना चाहिए।
4. रोगग्रस्त शाखा की कटाई के बाद कटे भाग पर कॉपर आक्सीक्लोराइड की पेस्टिंग तथा पूरे वृक्ष पर इसी फंफूदनाशक के 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम प्रति लीटर) के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

4. फोमा ब्लाइट :– पुरानी पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जिससे पत्तियाँ सूखकर गिरने लगती है और टहनियाँ बिना पत्ती के रह जाती है। पत्तियों के निचली सतह पर फंफूदी की पिकनीडिया काले दानों के रूप में बनती है। नवम्बर माह में रोग काफी स्पष्ट होता है।

रोकथाम :– कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव एक माह के अन्तराल पर दो बार करें।

5. सूटी मोल्ड (कजली फफूंद) :– पत्तियों एवं टहनियों पर कीटों द्वारा श्राबित मधु (हनीड्यू) पर काली फफूंदी उगकर पत्तियों को ढक लेती है। जिससे पत्तियों को सूर्य का प्रकाश न मिलने पर दैहिक क्रिया (भोजन बनाने की क्रिया) शिथिल पड़ जाती है।

रोकथाम :–

1. किसी कीटनाशी (मोनोक्रोटोफास या डाइमिथोएट) के साथ कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) घोल का छिड़काव करें।
2. 2 प्रतिशत स्टार्च (अरारोट) का घोल छिड़कने से जब स्टार्च सूखकर पत्तियों से छूटता है तब काली फफूंदी भी स्टार्च के साथ छूट जाती है।

6. बैक्टीरियल ब्लाइट या कैंकर :– इस बैक्टीरिया का प्रकोप पत्तियों, पर्णवृन्तों, टहनियों तथा फलों पर होता है। पत्तियों पर यह अनियमित पपड़ियों के रूप में उभरता है जो अक्सर पत्ती के अग्र भाग पर दिखाई देता है। धब्बे पहले हल्के पीले, बाद में बड़े होकर भूरे तथा पत्तियों के शिरा विन्यासों के कारण विभिन्न कोणिक आकार के उभरे कैंकरस हो जाते हैं। इसका प्रकोप आम के गूदे पर भी देखा गया है।

रोकथाम :– प्रमाणित बीजू पौधा और बाग परिशोधन से रोग को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

रोग दिखाई देने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लीन सल्फेट (200 पी.पी.एम.) के घोल का 15 दिन पर दो छिड़काव करें।

7. रेड रस्ट (लाल गिरवी) रोग :– यह रोग वर्षा ऋतु में एक काई के द्वारा होता है। इसमें पत्तियों एवं टहनियों पर तारे के आकार की गोल, नारंगी रंग की उभरी हुई काई उत्पन्न हो जाती है। जो वर्षो होने पर धुलकर सफेद हो जाती है।

रोकथाम :– कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

(ब) भण्डारण एवं विपणन काल के रोग :–

1. एन्थ्रैक्नोज :– इस रोग से भण्डारण में लगभग 24 प्रतिशत तक हानि होती है। पकते हुए फलों पर गोल अनियमित आकार के धब्बे जो बीच में कुछ दबे होते हैं, नजर आते है बाद में ये पूरे छिलके पर फैल जाते हैं और फल सड़ने लगता है।

रोकथाम :– फलों को कार्बेन्डाजिम (0.05 प्रतिशत) के घोल में एक बार डुबोकर फिर भण्डारण करने से रोग की रोकथाम की जा सकती है।

2. ढेंपी विगलन (स्टेम एण्ड राट) :– इस रोग से 18–30 प्रतिशत तक हानि होती है। इस रोग के लगने पर डठल के नजदीकी भाग के पास का भाग भूरा पड़ने लगता है। बाद में फलों के ऊपरी सिरे गोलाई में सड़ने लगते हैं। अंत में पूरा फल सड़कर काला दिखाई देने लगता है।

रोकथाम :– फल को तोड़ते समय सावधानी बरतें। फलों को डंठल के साथ तोड़कर एवं कार्बेन्डाजिम 0.05 प्रतिशत घोल में डुबोकर फिर भण्डारण करने से रोग कम होता है। भण्डारण कक्ष हवादार, ठंडे और शुष्क होने चाहिए।

3. काला विगलन :– भण्डारण एवं परिवहन के दौरान इससे 25 प्रतिशत तक हानि होती है। भण्डारण के दौरान अधिक आर्द्रता तथा गर्मी होने से यह रोग अधिक तेजी से फैलता है। इस रोग का प्रकोप सिर्फ उन्ही फलों पर होता है जिसमें चोट–खंरोंच लगी हो। फल पर पहले अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं जो तेजी से बढ़कर भूरे–काले धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं। प्रभावित स्थान पर गूदा भी गल जाता है और ऐसे सड़े फलों से बदबू आने लगती है।

रोकथाम :– यह ध्यान रखा जाये कि आम में कम से कम खरोंचे आये। आम को भेजने से पहले टापसिन–एम या कार्बेन्डाजिम (0.05 प्रतिशत) तथा फ्रूटाक्स (0.1 प्रतिशत) के घोल में डुबोकर भण्डारण किया जाय।

(स) आम के प्रमुख विकार :–

1. गुम्मा (मालफारमेशन) :– इस विकार की प्रबलता कम उम्र के पेड़ों (8–10 वर्ष) में अधिक होती है। यह पौधशाला में नये पौधों में वानस्पतिक माल फारमेशन जिसमें बीजू पौधे के ऊपरी भाग में सूजन हो जाती है और छोटे–छोटे पत्तियों का समूह गुच्छों के रूप में बदल जाता है, होती है तथा बाग के कम उम्र के पौधों में लोरल मालफारमेशन जिसमें पुष्प शाखायें छोटी हो जाती है तथा फूलों के स्थान पर बड़े–बड़े गुच्छे बन जाते हैं। ग्रसित पुष्प स्वस्थ पुष्पों की अपेक्षा अधिक मोटे तथा उनमें नर पुष्पों की अधिकता होती है। इसमें फल नहीं लगते और यदि इन्हें काटा न जाये, तो कभी–कभी ये वर्ष भर पेड़ों पर लगे रहते हैं। इस विकार के होने में बागों की विकास प्रक्रिया, उनका पोषण प्रबन्ध, पादपरोग संक्रमण, विषाणु सक्रमण व हारमोन असंतुलन का समावेश हो सकता है।

रोकथाम :–

1. ऐसे बाग, जहाँ इसका प्रकोप कम है वहाँ प्रथम आये हुए बौरों को दिसम्बर–जनवरी में तोड़ देना काफी होगा।
2. रोगग्रस्त गुच्छों को अप्रैल माह में 30 सेन्टीमीटर टहनियों सहित काटकर जला दें।
3. जहाँ इस रोग का प्रकोप प्रत्येक वर्ष हो, उस बाग में अक्टूबर के द्वितीय सप्ताह में 200 पी.पी.एम. (200 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी में) नैथलीन एसिटिक एसिड (एन.ए.ए.) अथवा 40 मिलीलीटर प्लेनोफिक्स प्रति 9 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

2. कोइलिया विकार (ब्लैक टिप) एवं आंतरिक सड़न (इन्टरनल निक्रासिस) :– ये व्याधियाँ दैहिक असंतुलन के कारण होती हैं। इनका प्रकोप फलों तक सीमित है। कोयलिया रोग ईंट के भट्टे से निकलने वाली गैसों सल्फर डाईआक्साइड, कार्बन मोनाऑक्साइड, तथा इथलीन के कारण होता है। इसमें सर्व प्रथम फल का निचला हिस्सा पहले हल्का पीला, बाद में भूरा और

अंत में काला पड़ जाता है। काला भाग बाद में सूखकर सख्त हो जाता है।

आंतरिक सड़न विकार में ग्रसित फलों का निचला हिस्सा भूरा व कभी–कभी काला होकर अन्दर से सड़ने लगता है और सतह चमड़े जैसी हो जाती है। ऐसे फलों में बीज सड़ा एवं फटा हुआ होता है। साधारणतया ऐसे फल परिपक्वता से पूर्व ही गिर जाते है। यह विकार बोरान की कमी के कारण होता है।

रोकथाम :– उपरोक्त विकारों के रोकथाम हेतु सघन आम प्रक्षेत्र में ईट के भट्टे नहीं खुलने देना चाहिए। इसके अलावा फलों का आकार जब मटर के दाने के बराबर हो जाय तब 0.6 से 0.8 प्रतिशत (6 से 8 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) बोरेक्स का छिड़काव करें इसके बाद 10 दिन के अन्तर पर दो छिड़काव और करें।

3. गमोसिस :– यह विकार पौधों में सूक्ष्म तत्व जिंक, तांबा, बोरान तथा कैल्शियम की कमी के कारण होता है। ग्रसित वृक्ष की टहनी की छाल में हल्की दरारें बन जाती हैं। इन चिटकी दरारों से गोंद निकलने लगता है। गंभीर प्रकोप की दशा में पौधे सूखने लगते हैं।

रोकथाम :– पूर्ण विकसित पेड़ को 250 ग्राम जिंक सल्फेट, 250 ग्राम कॉपर सल्फेट (तूतिया) 125 ग्राम बोरेक्स (सुहागा) तथा 100 ग्राम बुझे चूने का मिश्रण प्रति वृक्ष के हिसाब से पेड़ के चारों तरफ शाखाओं के फैलाव तक बिखेर कर मिट्टी में मिला कर सिंचाई कर देना चाहिए। इन सूक्ष्म तत्वों को साल में एक बार सितम्बर–अक्टूबर में देना चाहिए

कीट नियंत्रण

1. आम का भुनगा अथवा लस्सी कीट (मैंगो हापर) :– यह एक छोटा तिकोने शरीर वाला आम का सबसे विनाशकारी कीट है। इसकी तीन प्रजातियां देश में मिलती हैं। इस कीट के वयस्क व शिशु भुनगे कोमल शाखाओं, पत्तियों एवं पुष्पक्रमों से रस चूसते हैं। निरन्तर रस चूसे जाने के कारण प्रभावित हिस्से सूखने लगते हैं, ये फलों के मुलायम वृन्त से भी रस चूसते हैं जिससे फल गिर जाते हैं। इसके द्वारा उत्सर्जित मधु जैसे पदार्थ पर काली फफूंदी (सूटी मोल्ड) उग जाती है, जिससे पत्तियों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। इस कीट का प्रकोप बौर निकलते ही जनवरी, फरवरी माह में प्रारम्भ हो जाता है।

इस कीट के नियन्त्रण हेतु कीटनाशकों का प्रथम छिड़काव बौर के 2–3 इंच अवस्था पर, द्वितीय छिड़काव 15–20 दिन के बाद और तृतीय छिड़काव जब फल सरसों के दाने के आकार के हो जाये तब निम्नलिखित कीटनाशकों में से चयन करना चाहिए।

1. मोनोक्रोटोफास 40 ई.सी. दर 1.50 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
2. फेनिट्रोथियान 50 ई.सी. 2.0 से 3.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
3. क्लोरोपाइरीफास 20 ई.सी. 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
4. डाईमेथोएट 30 ई.सी. 1.6 से 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
5. कार्बोरिल 50 डब्ल्यू.पी. दर 3.0 ग्राम प्रतिलीटर पानी में।

2. कढ़ी कीट (मैंगोमिलीबग) :– इस कीट की प्रौढ़ मादा सफेद, चपटी, मोटी अण्डाकार तथा पंखहीन होती है। इसके शिशु कीट और प्रौढ़ मादा कोमल शाखाओं व वृन्तों से रस चूसते हैं तथा उनके द्वारा उत्सर्जित चिपचिपे पदार्थ पर काली फफूंदी उग आती है। अधिक प्रकोप में फल गिर जाते हैं। मादा कीट, अप्रैल, मई में वृक्ष से उतर कर जमीन में लगभग 15 सेन्टीमीटर गहराई तक थैली में अण्डे देती है। जिससे दिसम्बर–जनवरी में शिशु निकलते हैं, जो पड़ों के ऊपर धीरे–धीरे रेंग कर चढ़ते हैं।

इसकी रोकथाम के लिए मई–जून के माह में बाग की गहरी खुदाई करनी चाहिए ताकि अण्डे ऊपर आकार तेज धूप से नष्ट हो सकें। दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक थालों की गुड़ाई कराकर मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धूल 150–200 ग्राम प्रति थाले के हिसाब से मिट्टी में मिला देना चाहिए। दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह तक वृक्ष के मुख्य तने पर लगभग 1/2 मीटर की ऊँचाई पर 25–30 सेन्टीमीटर चौड़ी 400 गेज की पालीथीन शीट को पतली सुतली से बाँधकर दोनों सिरों को चिकनी मिट्टी से लेप देना चाहिए। यदि इंगित तकनीकों को अपनाये जाने के बाद भी कीट मंजरियों तक चढ़ गये हो, तो ऊपर दिये गये कीटों के नियंत्रण हेतु दर्शायी गई दवाओं में से किसी एक दवा का छिड़काव करें।

3. शल्क कीट (स्केल इनसेक्ट) :– शल्क कीट की कई प्रजातियाँ हैं जो आम को अत्यधिक हानि पहुँचाती हैं। इन कीटों के शिशु व प्रौढ़ मुलायम टहनियों व पत्तियों की निचली सतह पर सैकड़ों की संख्या में चिपके रहते हैं तथा रस चूसकर वृक्ष की पत्तियों पर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ (हनीड्यू) छोड़ते हैं, जिस पर काली फफूँदी (सूटीमोल्ड) उग आती है। अधिक प्रकोप में समस्त पत्तियां काले चूर्ण से ढक जाती हैं। फलस्वरूप पौधों की भोजन बनाने की प्रक्रिया, श्वसन और वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ये कीट फरवरी से अक्टूबर तक अधिक सक्रिय रहता है और जाड़ों में इसका विकास मंदगति से होता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित में से एक दवा का छिड़काव करना चाहिए।

1. मोनोक्रोटोफास 40 ई.सी. दर 1.25 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
2. मिथाईल–ओ–डिमिटान 25 ई.सी. दर 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
3. डायमेथोएट 30 ई.सी. दर 1.6 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।

पहला छिड़काव फरवरी माह में बौर निकलने के बाद परन्तु फूल खिलने से पूर्व तथा द्वितीय छिड़काव 15–20 दिन पश्चात् फल सरसों के दाने के आकार का हो जाये तब करना चाहिए। कीट नाशक का तीसरा छिड़काव आवश्यकतानुसार अक्टूबर में करना चाहिए। काली फफूंदी को हटाने हेतु पत्तियों पर से छिड़काव के साथ घुलनशील गंधक 2 ग्राम अथवा स्टार्च 20 ग्राम प्रति लीटर पानी के दर से कीटनाशक के साथ मिलाया जा सकता है।

4. आम की शाखाओं में नुकीली गाँठ बनाने वाला कीट (शूटगाल मेकर) :– इस कीट का प्रकोप तराई क्षेत्रों तक ही सीमित है। इस कीट के शिशु पत्तियों एवं नई शाखाओं के कक्ष कलिकाओं से रस चूसते हैं तथा विषैला स्राव करते हैं जिसके कारण कक्ष कलिकायें गुलाब की नोकदार कलिका (गाल) के रूप में परिवर्तित होकर अगले वर्ष सूख जाती है। फलस्वरूप वानस्पतिक वृद्धि नहीं होती और पुष्प वृन्त भी नहीं बनते हैं। प्रभावित वृक्षों की पैदावार बहुत कम हो जाती है और गम्भीर प्रकोप हो जाने पर शतप्रतिशत हानि हो सकती है तथा उपज कम हो जाती है।

नियंत्रण :– यदि बाग में कम मात्रा में गाल बनी हो तो नवम्बर से फरवरी तक उन्हें दरांती से काट कर जला दें अथवा मिट्टी में मिला दें। इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु निम्न कीटनाशकों से जुलाई–अगस्त माह में 15–15 दिन के अन्तर पर तीन छिड़काव करें।

1. क्यूनलफास 25 ई.सी. दर 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
2. मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. दर 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।
3. डायमेथोएट 30 ई.सी. दर 3.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में।

कीटनाशी का प्रथम छिड़काव जुलाई के अन्तिम सप्ताह में अवश्य कर दें तथा शेष दो छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर साफ मौसम में करें। छिड़काव करते समय पत्तियों की निचली सतह अवश्य भीग जानी चाहिए। छिड़काव के समय में परिवर्तन नहीं करना चाहिए क्योंकि उस समय अण्डों से बच्चे निकलते हैं। 2,4–डी 80 प्रतिशत 40 ग्राम 200 लीटर पानी में घोल कर नई शाखाओं के शीर्ष भाग पर जहाँ नुकीली गाँठ बनी हो, छिड़काव सितम्बर–अक्टूबर माह में करने से गांठे खुल जाती है।

5. आम तना बेधक (स्टेम बोरर) :– प्रौढ़ कीट लगभग 5 सेन्टीमीटर लम्बा तथा राख के रंग का होता है। पूर्ण विकसित गिडार लगभग 8.0 सेन्टीमीटर से 9. 60 सेन्टीमीटर तक लम्बी मटमैले रंग की होती है। इसकी गिडार तने को छेद कर सुरंग बना लेती है, जिससे पेड़ कमजोर हो जाता है। अधिक प्रकोप में कभी–कभी पेड़ सूख जाते हैं।

इस कीट के नियंत्रण हेतु मिट्टी का तेल या पेट्रोल या एक गोली एल्यूमिनियम फास्फाइड या मोनोक्रोटोफास 0.05 प्रतिशत का घोल या डी.डी.वी.पी. का घोल तने में किये छिद्र में डालकर छेद को गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

6. छाल खाने वाला कीट :– इस कीट की पूर्ण विकसित गिडार मटमैले रंग की लगभग 5.0 से 6.0 सेन्टीमीटर लम्बी होती है। इसकी उपस्थिति का आभास ग्रसित पेड़ के तने पर रिबन की भाँति बने जालों से होता है। ये गिडार रात्रि के समय अपनी सुरंग, जो कि तनों

व शाखाओं में दिन में छिपने के लिए बनाती हैं, से निकलकर बनाये गये जाले के अन्दर रहकर छाल खाती रहती हैं। इसका प्रकोप वर्ष भर रहता है तथा भारी क्षति होती है।

नियंत्रण :– ग्रसित पेड़ से गिडार द्वारा बनाये गये जालों को साफ करके छिद्र में मिट्टी का तेल अथवा पेट्रोल अथवा दोनों का मिश्रण (3:2) या क्लोरोफार्म में भीगी रूई का टुकड़ा छिद्र में गहरा डाल कर गीली मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।

7. पत्ती काटने वाला कीट (लीफ कटिंग वीटिल):– प्रौढ़ कीट लगभग 5 सेन्टीमीटर लम्बा गहरे भूरे रंग का होता है तथा पंख चमकदार काले रंग के होते हैं। वर्षा ऋतु में यह अधिक सक्रिय रहते हैं। यह आम की नई–नई कोपलों को काटकर नर्सरी अवस्था में पौधों को पत्ती विहीन कर देते हैं। यह पत्ती को इस तरह से काटते हैं जैसे चाकू या कैंची से काटा गया हो।

नियंत्रण :– इस कीट का प्रकोप आम के अतिरिक्त लीची पर भी होता है पौधों पर बी.एच.सी. 5 प्रतिशत धूल का बुरकाव अथवा इन्डोसल्फान 35 ई.सी. 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से बनाये घोल का 15 दिन के अन्तर पर दो से तीन छिड़काव करना चाहिए।

8. फलों की मक्खी (फ्रूट लाई) :– यह पीले भूरे रंग की मक्खी होती है जो पके अथवा अधपके फलों की त्वचा के नीचे जून–जुलाई में अण्डे देती है। इन अण्डों से मैगट (सूंड़ी) निकल कर फलों के अन्दर का गूदा खाती रहती है जिसके फलस्वरूप फल सड़कर गिर जाते हैं।

फल जमीन पर गिर जाने पर पूर्ण विकसित सूंड़ी (मैगट) भूमि में प्यूपा अवस्था में चले जाते हैं। जहाँ से प्रौढ़ मक्खी बनकर अन्य फलों को ग्रसित करती हैं। इस कीट का प्रकोप पतली त्वचा वाले व देर से पकने वाले फलों पर अधिक होता है।

नियंत्रण :– इसकी रोकथाम के लिए उद्यान में सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए तथा ग्रसित फलों को एकत्रित करके जमीन के अन्दर लगभग 1 मीटर गहराई तक दबा देना चाहिए। प्रौढ़ मक्खी को नष्ट करने हेतु प्रलोभन चारे का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए कार्बोरिल (4 ग्राम प्रति लीटर पानी में) 0.1 प्रतिशत प्रोटीन हाइड्रोजाइजेट अथवा शीरे के घोल का छिड़काव मई के प्रथम सप्ताह में तथा दूसरा 21 दिन बाद करना चाहिए। इसके अलावा मिथाइल युजीनोल 0.1 प्रतिशत, मैलाथियान 0.1 प्रतिशत के घोल को डिब्बों में डालकर बागों में अप्रैल से जून तक लटकाने से नरकीट जैसे जमीन से निकलते हैं, इस रसायन (मिथाइल यूजीनोल) की ओर आकर्षित होते हैं और वे उस घोल में मिलाये गये जहर से मर जाते हैं। एक हैक्टेयर में लगभग 100 डिब्बे या बोतल दवायुक्त प्रलोभन चारें को को लटकाना चाहिए।

9. शाखा बेधक कीट (शूट बोरर) :– इस कीट की सूड़ियां अण्डे से निकलकर मुलायम पत्तियों की मध्य शिरा के अन्दर छेद करके घुस जाती है। उसके बाद मध य शिरा से निकलकर मुलायम टहनियों के अग्रभाग से घुसकर अन्दर की ओर नालाकार गर्त बनाती हुई नुकसान पहुँचाती हैं। नर्सरी अवस्था में यह कीट अधिक हानि पहुँचाता है तथा प्रकोप मार्च–अप्रैल तथा अगस्त से अक्टूबर तक रहता है।

नियंत्रण :– इसकी रोकथाम हेतु एन्डोसल्फान 35 ई. सी. 1.5 मिलीलीटर अथवा कार्बरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में बनाये घोल का 2–3 छिड़काव 15–20 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

10. आम का गाल मिज :– इसके कीड़े बहुत छोटे–छोटे हल्के गुलाबी रंग के होते हैं और इनकी मादा मंजरियों एवं तुरन्त बने फलों में तथा बाद में मुलायम कोपलों में अण्डे देती हैं। जिनकी सूंड़ी अन्दर ही अन्दर खाकर नष्ट कर देती हैं। प्रभावित भाग काला पड़कर सूख जाता है।

नियंत्रण :– इस कीट के नियंत्रण हेतु फेनिट्रोथियान 50 ई.सी. 1 मिलीलीटर या डायमेथोएट 35 ई.सी., 1.5 मिलीलीटर या मिथाईल–ओ–डेमेटान 25 ई.सी. 175 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर एक छिड़काव बौर निकलते समय (बड बर्स्ट की अवस्था में) में करना चाहिए।

उपयोगी गुलाब के फूल

निमिषा सूर्यवंशी
शोध छात्रा
फैमिली रिसोर्स मैनेजमेन्ट
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

डा0 रजिया परवेज
एसोसिएट प्रोफेसर
फैमिली रिसोर्स मैनेजमेन्ट
ऐथिलिन्ड स्कूल आफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

गुलाब के फूलों का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता है और ये अलग क्रियाओं में प्रयोग होकर अपनी विशेषताओं का वितरण करते हैं जैसे–खेती, दवा के रूप में, सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में तथा भोजन में प्रयोग द्वारा भी इनका महत्व बढ़ता है। इसीलिये कहते हैं कि ''मनुष्य के जीवन में बहुत से पुष्प होते हैं, परन्तु गुलाब एक होता हैं।'' ये अपनी सुगन्ध व मखमली स्पर्श के लिए जाना जाता है। यह अत्यधिक सुन्दर व प्रभावशाली स्पर्श के लिए जाना जाता हैं। यह अत्यधिक सुन्दर व प्रभावशाली फूल होने के कारण मानव जीवन में प्रचलित हैं।

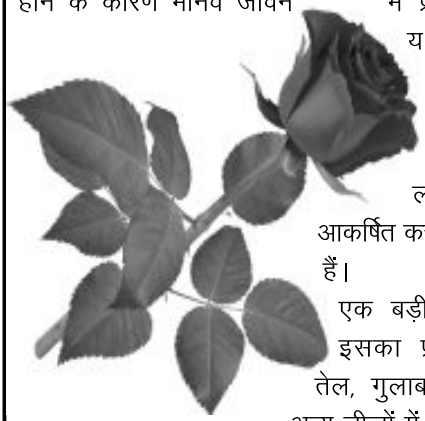

यह अपने विभिन्न रंगों व आकार के द्वारा लोगों को आकर्षित करने में सफल हैं।

एक बड़ी संख्या में इसका प्रयोग इत्र, तेल, गुलाब जल और अन्य चीजों में प्रयोग होता हैं।

सजावट में गुलाब का प्रयोग :– गुलाब के अधिक प्रयोग से बगीचे के सजाने से सुन्दरता बढ़ जाती है। साथ ही साथ इसकी सुगन्ध वातावरण में फैलकर हमें शुद्ध हवा की सांस लेने में सहायता करती व रंगीन गुलाब हमारी आखों में ठण्ड पहुचाते हैं। गुलाब के फूल की झाड़िया भी खुशबूदार होती है और इसके फल भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

दवा में गुलाब का प्रयोग :– रोम देश ने गुलाब के फूलों का प्रयोग दवा के रूप में करना प्रारम्भ किया था। गुलाब के फूल में विटामिन 'C' प्रचुर मात्रा में पाया जाता हैं। गुलाब के फूल को शरीर पर घिसने से हमें गर्मी प्राप्त होती है, जो सर्दियो में हमें बीमारियों से सुरक्षित रखती हैं। ये बन्द नाक, जुकाम, बुखार, गले की परेशानी व खांसी में दवा का कार्य करता हैं। यह सीने की बीमारियों जैसे अलग–अलग चीजों से होने वाले संक्रमण से लड़ता हैं।

यह हमारे पाचन तंत्र को भी सुनियोजित रखता हैं तथा ये बैक्टेरिया की संख्या को संतुलित रखता हैं। ये हमारी किडनी को असुरक्षित तत्वों से सुरक्षित रखता हैं। उल्टी, दस्त, डायरिया, गैस की बीमारी में भी इसका सेवन अत्यधिक फायदेमन्द होता है। यह सभी प्रकार की लिवर समस्या जैसे गैस को भी दूर करता हैं और फिजीशियन यह भी कहते है कि यह लिवर व पित्ताशय को स्वच्छ रखता है।

गुलाब की पंखुड़ी से बनी चाय हमारे रक्त संचार को सही रखती है। साथ ही यूरिन इन्फेक्शन से हमें बचाती है। स्त्रियों के मासिक धर्म को सुचारू रूप से चलाने तथा इस अवधि में होने वाले दर्द से भी आराम दिलाती है ये चाय।

गुलाब हमारे नरवस सिस्टम को भी सन्तुलित बनाता है। जिससे हम तनाव, थकान, सदमे से दूर रहते हैं।

गुलाब एक असरदार क्लीन्जर और प्यूरिफायर होता हैं। गुलाब के फल हमें कैंसर व कार्डियों वसक्यूलर बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं।

गुलाब की पंखुड़ी के साथ–साथ इसकी पत्ती, फल, बीज सभी विभिन्न रूप से मेडिकली प्रयोग किये जाते हैं।

विटामिन सी के अतिरिक्त शोधकर्ताओं ने प्राप्त किया हैं कि गुलाब के फल में 11 प्रतिशत पेक्टिन और 3 प्रतिशत मेलिक एसिड व साइट्रिक एसिड का मिश्रण प्राप्त होता हैं। जिसके कारण ये हमारे विभिन्न अन्तः अंगों को स्वरूप बना के रखता हैं।

गुलाब की पत्ती से बनी चाय हमारे शरीर के तापमान को सही रखती है। इसका असरदार टाक्सिन गुलाब के फल के साथ चाय में मिलकर हमें बुखार से दूर रखते है। ये हमारी त्वचा में पड़ने वाले रसेस व सूजन को भी दूर रखने में कारगर है।

भोज्य पदार्थो में गुलाब का प्रयोग :– इतनी सारी चिकित्सीय उपयोग के ही कारण इसका प्रयोग बहुत सारे भोज्य पदार्थो में भी किया जाता है। प्रायः इसका, फल, पंखुड़ी, पत्ती का ताजा होने के साथ ही साथ सुखाकर भी प्रयोग में लाया जाता हैं।

गुलाब के फल का प्रयोग प्रायः सेब के सीरप, जूस, जेली, जैम, मर्मलेड, पूड़ी, सूप, बेड आदि में किया जाता हैं। इसका प्रयोग अलग–अलग प्रकार से होता है जैसे कभी चूरा बना के कभी सूखा के, कभी गुलाब जल के रूप में, कभी पंखुड़ी से सजा के इत्यादि।

यह प्रायः विभिन्न मिठाईयों में भी प्रयोग होता हैं। जिनमें खीर, रबड़ी, सन्देश, बर्फी मुख्य हैं। विभिन्न रूपों में ये चावल पकाने में भी प्रयोग होता हैं। ये प्रायः बिरयानी, फ्राइंड राइस, जीरा राइस आदि में प्रयोग होता हैं। गुलाब के फल को गुड़हल के फूल के साथ मिलाकर चाय बनाने से शरीर को स्फूर्ति मिलती हैं। गुलाब जल, गुलाब का तेल का प्रयोग कैन्डी, मिठाई, सीरप, सलाद, जेली और जैम में प्रयोग किये जाते हैं।

सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में गुलाब का प्रयोग :– गुलाब का अत्यधिक प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में होता हैं यह इत्र, क्रीम, पाउडर, फेश पैक, फेश वास, गुलाब जल, बाडी लोशन, हेअर आयल, हेयर स्पा, बॉडी स्पा आदि के लिये प्रयोग होता है।

गुलाब का प्रयोग हमें शुद्ध वातावरण का एहसास कराता है, आंखों को ठण्ड देता है दिमाग को शान्त रखता हैं। अतः गुलाब के पेड़ का हर हिस्सा हमारे लिए सुखदायी होता है।

पृष्ठ सं० 14--का शेष

रोग :–

1. लीची का विगलन रोग :– इस रोग का आक्रमण फलों के पकने के समय होता है। इस रोग के प्रभाव से सर्वप्रथम गूदा मुलायम होकर सड़ने लगता है। छिलके का रंग पहले हल्का भूरा और बाद में गहरा भूरा हो जाता है। रोग का प्रकोप पके फलों पर, पेड़ों एवं भण्डार व दोनों ही जगह होता है।

इसकी रोकथाम के लिए फलों को पकने से 20 से 25 दिन पहले कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति ली0 पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

2. लीची का लीफ ब्लाच (पर्ण धब्बा रोग) :– इस रोग में सर्वप्रथम पत्तियों की दोनों सतहों पर छोटे–छोटे पीले या गहरे पीले रंग के धब्बे बनते हैं, जो ऊपर सतह पर अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। कई छोटे–छोटे धब्बे मिलकर बड़े धब्बे में बदल जाते हैं। पत्तियां सूखने लगती है। अधिक प्रकोप की अवस्था में उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत के घोल के पर्णीय छिड़काव से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है। छिड़काव सितम्बर से अक्टूबर तक किया जाना चाहिए।

भण्डारण :– परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि लीची के फलों को डंठल से तोड़कर भलीभांति साफ करके पॉलीथीन की छिद्रयुक्त थैलियों में बन्द करके 40 से 43 डिग्री फारेन हाइट तापक्रम या 90 प्रतिशत आर्द्रता पर शीतगृह में 28 से 30 दिन तक अच्छी दशा में भण्डारण किया जा सकता है। गूदे को चीनी के 40 प्रतिशत घोल में बन्द करके जीरो डिग्री सेल्सियस से नीचे 17.8 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 270 से 360 दिनों तक अच्छी दशा में रखा जा सकता है।

लाभदायक लोबिया के पत्ते

हिना नाज
शोध छात्रा
इथिलिण्ड स्कूल ऑफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

डा0 श्रीमती अनीशा वर्मा
सहायक प्रवक्ता
इथिलिण्ड स्कूल ऑफ होम साइंस
शियाट्स, इलाहाबाद

लोबिया हमारे देश के कई क्षेत्रों में पाया जाता है। इसे लोग कई नामों से जानते है। जैसे बरबट्टी, बोरा, बोदी इत्यादि। आमतौर पर लोबिया का बीज एवं लोबिया लोगों में प्रसिद्ध है। इसे लोग दाल एवं सब्जी बनाकर खाते है। लोबिया का पत्ता भी काफी पोषक होता है और इसमें पाये जाने वाले तत्व हमारे शरीर को कुपोषण से भी बचा सकता है। इसे लोग मुख्यता कम मात्रा में भी अपने घर के बगीचे में भी उपजा सकते है। ये फरवरी से अगस्त तक के महीने में मिलता है। लोबिया के पत्ते को सब्जी बनाकर खाया जा सकता है तथा चिला, पकौरी, इत्यादि जैसे खाने के वस्तु में भी मिलाकर बनाया जा सकता है।

लोबिया के पत्ते में पाये जाने वाले पोषक तत्व लोबिया के बीज की तुलना में, कैल्सियम 7 गुणा, आयरन 3 गुणा, फासफोरस 2 गुणा, नयासिन 5 गुणा अधिक मात्रा में पाया जाता है।

लोबिया के पत्ते में पाये जाने वाले तत्व हमें कई रोगों से बचाता है अथवा लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। जैसे :– हृदय रोग, लोबिया के पत्ते में पाये जाने वाले तत्व एंटीअंक्सीटेन्ट तथा कैरेटिनायडस और फाइबर हृदय रोग में लाभदायक होता है।

लोबिया के पत्ते में पाये जाने वाले तत्व विटामिन्स और मिनिरल्स हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और साथ ही कैरोटिन और आयरन की मात्रा अधिक होने के कारण आँख की रोशनी तथा रक्त बनाने की क्षमता को बढ़ाता है। लोबिया का पत्ता पेट के रोगों से भी मुक्ति दिलाता है और पाचन शक्ति को भी बढ़ाता है। लोबिया के पत्ते में 20–26 प्रतिशत आयरन होता है। जो एनीमिया जैसे रोगों में लाभदायक है। बच्चे एवं किशोर अवस्था की लड़कियाँ, जो आसानी से एनीमिया से ग्रसित हो जाते है, उन्हें आयरन युक्त खाना, जैसे – पत्तेदार हरी सब्जियां एवं लोबिया के पत्ते आदि काफी मात्रा में खाना चाहिए।

ICMR के अनुसार कम से कम एक वयस्क मनुष्य को 100 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जी लेनी चाहिए। लेकिन हमारे देश में एक आम व्यक्ति केवल 10–20 ग्राम ही लेता है। क्योंकि हरे पत्तेदार सब्जियों का मूल्य ज्यादा होता है। लोबियां के पत्ते सस्ता और काफी पोषक है। इसे हम बिना मूल्य के अपने घर के बगीचों में भी उपजा सकते हैं।

लोबिया के पत्ते को विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ में मिलाया जा सकता है। जैसे :– पकौड़े, सेव, चिला, गट्टा, मठ्री, मोमो, पोहा, पराठें इत्यादि।

हे बालकों, हम वचन और जीभ ही से नहीं, पर काम और सत्य के द्वारा भी प्रेम करें। इसी से हम जानेंगे, कि हम सत्य के हैं; और जिस बात में हमारा मन हमें दोष देगा, उसके विषय में हम उस के सामने अपने अपने मन को ढांढस दे सकेंगे। क्योंकि परमेश्वर हमारे मन से बड़ा है; और सब कुछ जानता है। हे प्रियो, यदि हमारा मन हमें दोष न दे, तो हमें परमेश्वर के सामने हियाव होता है। और जो कुछ हम मांगते हैं, वह हमें उससे मिलता है; क्योंकि हम उसकी आज्ञाओं को मानते हैं; और जो उसे भाता है वही करते हैं। और उसकी आज्ञा यह है कि हम उसके पुत्र यीशु मसीह के नाम पर विश्वास करें और जैसा उस ने हमें आज्ञा दी है उसी के अनुसार आपस में प्रेम रखें।

1 यूहन्ना 3 : 18–23

विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग

सैम हिग्गिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नॉलाजी एण्ड साइंसेज़

इलाहाबाद - २११००७

Phone- 0532-2684278

हमार गाँव

सदस्यता फार्म

1. नाम :— ....

2. पद :— ....

3. विभाग :— ....

4. पता :— कार्यालय..

....

निवास..

5. दूरभाष :— लैण्डलाइन— कार्यालय....................................निवास..

मोबाइल..

6. वार्षिक सदस्यता शुल्क का भुगतान :— डिमाण्ड ड्राफ्ट/चेक नं0....................................दिनांक......................

बैंक ....

धनराशि :— रुपये एक सौ मात्र (रु0 100/—)

(उचित स्थान पर सही का चिन्ह लगायें। नियम–8 देखें) रुपये दो सौ मात्र (रु0 200/—)

''शिएट्स पब्लिकेशन एकाउन्ट'' के पक्ष में देय।

7. वार्षिक सदस्यता अवधि वर्ष.....................के लिए ।

हस्ताक्षर

दिनांक....................

नाम......................................

यहां से काटिये — यहां से काटिये

यहां से काटिये

<u>नियम एवं शर्ते</u>

लेखक ध्यान दें —

1. हमार गाँव त्रैमासिक पत्रिका के लिए लेख केवल सरल हिन्दी भाषा में ही स्वीकार्य किये जायेंगे।
2. लेख पेपर में केवल एक तरफ डबल स्पेस में टाइप अथवा स्पष्ट हस्तलिखित ही मान्य होंगे।
3. लेख कृषकों, उनके परिवारों के हित में कृषि विज्ञान एवं गृह विज्ञान पर आधारित होने चाहिए।
4. लेख चार पेज (साईज 7.25 x 9.50) से अधिक न हो।
5. हमार गाँव के सदस्यों के ही लेख पत्रिका में प्रकाशित किये जाते हैं।
6. सदस्यता फार्म विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग में उपलब्ध हैं।
7. वार्षिक सदस्यता हेतु शुल्क रुपये एक सौ (रु0 100/—) मात्र एवं संस्थान के लिए सदस्यता शुल्क रुपये दो सौ (रु0 200/—) मात्र निर्धारित है। (डाकखर्च अतिरिक्त)।
8. हमार गाँव की सदस्यता अवधि प्रत्येक वर्ष जनवरी से दिसम्बर अन्त तक होगी।
9. विद्यार्थियों द्वारा प्रेषित लेख उनके सम्बन्धित विभाग के विभागाध्यक्ष से अग्रसारित होना आवश्यक है।
10. लेख की सम्पूर्ण जिम्मेदारी लेखक की होगी। लेख के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन प्रभाग, शिएट्स, इलाहाबाद किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं होगा।

** शैक्षणिक संस्थानों जैसे संगठन/विश्वविद्यालय/महाविद्यालयों/स्कूलों पर लागू।*

University Publication Division

Sam Higginbottom Institute of Agriculture, Technology & Sciences

Allahabad-211007

Phone- 0532-2684278

cut from here

HAMAR GAON

Membership Form

1. Name :.....
2. Designation :.....
3. Department affiliation :.....
4. Address : Office.....

   .....

   Residence.....

   .....
5. Phone No. : Office.....Residence.....

   Mobile.....
6. D.D./Cheque No.....Dated.....Banker.....
   (Crossed)

   .....

Amount : Rupees One Hundred only (Rs. 100/-) for the year.....
(Tick the appropriate ref. rule no. 8)
Rupees Two Hundred only (Rs. 200/-) for the year.....

Payable to **SHIATS Publication A/**c.

Signature

Dated.....

Name.....

cut from here

RULES AND REGULATION

1. Article for publication in Hamar Gaon, should be in simple Hindi language only.
2. Hamar Gaon is quarterly publication.
3. It should be either neatly hand written only on one side of the paper or typed in double spaced.
4. Articles should be of the interest of farmers, and the rural setup, which includes topics on Agriculture Science and Home Science origin etc.
5. Article should be preferably short, not more than four pages of the size of 7.25 x 9.50.
6. Articles for Hamar Gaon will find a place, only from members of Hamar Gaon.
7. Membership form is available in office of University Publication Division.
8. Annual Individual Membership is available for Rupees One Hundred (Rs. 100/-) only while *Institutional membership (Departments) is for Rupees Two Hundred (Rs. 200/-) only. (Postal Charges extra)
9. Membership for Hamar Gaon begin every January and ends in December.
10. Articles from students should be forwarded by Head of the Department only.
11. The authenticity of the articles is the sole responsibility of the authors and not of University Publication Division.

* Applicable to educational institutions i.e. organisations/university/colleges/schools.